लाला हरदेव सहाय

(जीवनी)

एम॰एम॰ जुनेजा

लाला हरदेव सहाय
(जीवनी)

लाला हरदेव सहाय
(जीवनी)

एम.एम. जुनेजा
Ph. D.

प्रकाशक :
Modern Publishers
Rose -103, Bollywood Heights
(Adjoining Sector-20, Panchkula)
Peer Mushalla, ZIRAKPUR - 160104 (Pb.)

Mobile : 9914115333
E-mail : mmj.hisar@yahoo.co.in

© एम.एम. जुनेजा

संशोधित संस्करण : 30 सितम्बर 2011 (लालाजी की 49वीं पुण्य-तिथि)

मुद्रक :
पंकज प्रिण्टर्स
536/ए, गली नं. 4-ए,
विजय पार्क, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 9891362685

Lala Hardev Sahai : Jeevani
by : M.M. Juneja

यह पुस्तक हरियाणा के प्रसिद्ध

स्वतन्त्रता-सेनानी

श्री बलवंतराय तायल जी

को समर्पित है जिन्होंने सर्वप्रथम

लाला हरदेव सहाय

की जीवनी लिखवाने का बीड़ा उठाया।

लेखकीय

भारत के महान सपूत लाला हरदेव सहाय (1892-1962) ने अपने देशवासियों की अनेक क्षेत्रों में निःस्वार्थ सेवा की है। अधिक शिक्षित न होने के बावजूद, वह शिक्षा के महत्त्व को भली-भाँति जानते थे। वह 'प्रथम हरियाणावी' थे जिन्होंने सन् 1912 में अपने पैतृक गाँव सातरोद (हिसार) में हिन्दी माध्यम का स्कूल खोला और उसके पश्चात् अनेक गाँवों में 65 स्कूल व एक शिल्पशाला खोलकर ग्रामीण जनता की अज्ञानता व बेकारी दूर करने का प्रयास किया तथा उन में राष्ट्रीय जागृति पैदा करने का अभियान चलाया।

सन् 1938-40 में जब हरियाणा व राजस्थान के बागड़ क्षेत्र में भीषण अकाल पड़ा तो लालाजी ने अकाल-पीड़ित जनता व जानवरों की रक्षा हेतु अनथक प्रयत्न किये। हरियाणा की प्यासी भूमि हेतु भाखड़ा नहर योजना को लागू करवाने में भी लालाजी का विशेष योगदान रहा है।

लालाजी 'प्रथम भारतीय' थे जिन्होंने वनस्पति घी का आरम्भ से ही विरोध किया। वह इसे 'मीठा जहर' व 'देश का दुश्मन' कहकर पुकारा करते थे। उनके विचार में, यदि वनस्पति के उत्पादन व खपत में वृद्धि होती है तो इसका हमारे स्वास्थ्य, देसी घी, घानी के कुटीर उद्योग, पशु-धन इत्यादि पर अनिवार्य रूप से दुष्परिणाम पड़ेगा। इसका एक अन्य कुप्रभाव हमारी व्यापारिक नैतिकता पर पड़ेगा क्योंकि वनस्पति की बहुत बड़ी मात्रा देसी घी में मिलावट करने के लिए प्रयोग की जाती है। अतः वनस्पति की वृद्धि को रोकने के लिए लालाजी ने अनेक कदम उठाये, जैसे :

—अखिल भारतीय वनस्पति विरोध समिति का गठन करना;

—संसद में वनस्पति-विरोधी बिल पेश करवाना;

—वनस्पति में भिन्न प्रकार का रंग मिलवाने का अभियान चलाना।

यह सत्य है कि सरकारी तंत्र व स्वार्थी तत्त्वों के अपवित्र गठबंधन के कारण वनस्पति के उत्पादन पर रोक लगाने में लालाजी असफल रहे,

परन्तु इस बुराई के लिए जिम्मेदार तत्त्वों का उन्होंने खुलकर पर्दाफाश किया। लालाजी की नजरों में इस बुराई की जड़ में--सर्वप्रथम अंग्रेजी शासक, दूसरे वनस्पति-कारखानों के मालिक और उनके बाद कांग्रेस दल। जब तक लालाजी जीवित रहे, भारत में वनस्पति के विरुद्ध आवाज गूँजती रही, परन्तु उनकी मृत्यु के बाद पता नहीं यह आवाज कहाँ खो गई?

गोरक्षक के रूप में, लालाजी का कोई स्पर्धी नहीं। वह हमेशा कहा करते थे, "गाय बची, तो मरता कौन? और गाय मरी, तो बचता कौन?" देश की आजादी के बाद भी जब गो-हत्या जारी रही तो लालाजी को बड़ा आघात पहुँचा। वह अक्सर कहा करते थे, "यह कितने दुःख की बात है कि आज दो बैलों के चुनाव-चिह्न वाली कांग्रेस पार्टी के राज व 'अशोक-चक्र वाले तिरंगे' के नीचे भी गो-वध जारी है।"

भारत के सर्वश्रेष्ठ गोरक्षक होने के नाते, लालाजी ने देश भर में एक शक्तिशाली आन्दोलन चलाया जिसके फलस्वरूप संविधान में धारा 48 सम्मिलित की गई; उत्तर-प्रदेश, बिहार, मेवात इत्यादि क्षेत्रों में गो-वध कानूनी तौर से निषेध हुआ; और कांग्रेस सरकार, विशेषकर प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, की गोवंश के प्रति दोहरी नीति का पर्दाफाश हुआ।

'स्वदेशी' के प्रति भी लालाजी का लगाव अनुपम था। सन् 1930 में अपने घर में खड्डी अथवा हथ-करघा लगाने वाले वह 'पहले वैश्य' थे। उन दिनों इस कार्य को वैश्य समुदाय में अच्छा नहीं माना जाता था। इसके अतिरिक्त, न केवल उनके वस्त्र ही खद्दर के होते थे बल्कि 'कुर्ते के बटन' भी खद्दर के होते थे। स्वतंत्रता-सेनानी के रूप में, लालाजी दो बार गिरफ्तार हुए—सन् 1921 व 1942 में। दोनों बार लालाजी को एक-एक वर्ष की कठोर कारावास की सजा हुई। लालाजी एक लेखक भी थे। उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन के 40 वर्षों में राष्ट्रीय मुद्दों पर लगभग 30 पुस्तकें लिखीं व 4 पत्रिकाओं का सम्पादन किया। वह अत्याधिक ईमानदार थे और उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताएं न्यूनतम थीं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की भाँति, लालाजी ने परिवार में रहते हुए 39 वर्ष की आयु में 'ब्रह्मचर्य' का व्रत धारण कर लिया था।

भारत के इस महान सपूत के जीवन व कार्यों को उजागर करने

की नितांत आवश्यकता को महसूस करते हुए, प्रस्तुत जीवनी तैयार की गई।

लेखक का विश्वास है कि भारत की भावी पीढ़ियाँ लालाजी के महान् व्यक्तित्व से प्रेरित होंगी क्योंकि उनका जीवन इस बात का प्रमाण है कि वह हरियाणा में ग्रामीण शिक्षा के संस्थापक थे, पीड़ित समाज के सेवक थे, भारतीय संस्कृति के प्रतीक थे व देश के धार्मिक तथा आर्थिक स्तम्भ गोवंश के सर्वश्रेष्ठ रक्षक थे।

–एम.एम. जुनेजा

आभार

सर्वप्रथम मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ हिसार नगर की निम्नलिखित चार दिवंगत विभूतियों का—श्री बलवन्त राय तायल, गांधीवादी व स्वतंत्रता सेनानी; भगत रामेश्वरदास, समाजसेवी व स्वतंत्रता सेनानी; पण्डित जगत सरूप एडवोकेट, नगर के प्रसिद्ध शिक्षाविद एवं समाजसेवी तथा श्री ओमप्रकाश जिन्दल—सुप्रसिद्ध उद्योगपति एवं हरियाणा सरकार के मंत्री—जिन्होंने लालाजी की जीवनी को उनकी जन्म-शताब्दी के सुअवसर पर लिखवाने की पहल की थी।

लाला हरदेव सहाय द्वारा स्थापित 'भारत गोसेवक समाज (दिल्ली)' के प्रबन्धक, श्री गंगा सिंह, का मैं अनुगृहीत हूँ जिन्होंने मुझे शोध-सामग्री उपलब्ध करायी। नवयुवक पुस्तकालय, सिरसा, के पदाधिकारियों का भी मैं धन्यवादी हूँ जिन्होंने मुझे लालाजी की पत्रिका *'ग्राम-सेवक'* की फाइलें देखने की अनुमति दी।

मैं अपने वरिष्ठ सहयोगी व हिसार नगर के जाने-माने विद्वान प्रोफेसर एन०के० तिवारी का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने कठिन परिश्रम करके पुस्तक लेखन में हृदय से मेरी सहायता की।

मैं लालाजी के पौत्र मुंबई निवासी श्री रामनिवास गुप्ता का भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान करके प्रस्तुत प्रोजेक्ट को ऑप टू डेट करने में भरपूर मदद की।

—लेखक

कालक्रम, 1892–1962

1892 (26 नवम्बर)	:	हिसार के निकट सातरोद गांव में जन्म।
1912 (12 जुलाई)	:	सातरोद गांव में प्राइमरी स्कूल की स्थापना।
1919–21	:	कलकत्ता में रहकर, व्यापार किया।
1921	:	कांग्रेस की सदस्यता; 'असहयोग आंदोलन' के दौरान एक वर्ष का कारावास।
1922	:	मियांवाली सैन्ट्रल जेल से रिहा।
1923 (नवम्बर)	:	'विद्या-प्रचारिणी सभा' की स्थापना।
1928	:	सातरोद के प्राइमरी स्कूल को मिडिल स्कूल बनाना।
1929 (अगस्त)	:	सातरोद स्कूल में लाजपतराय शिल्पशाला खोलना।
1931	:	ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करना।
(9 नवम्बर)	:	'ग्राम सेवा मंडल' की स्थापना।
1937 (फरवरी)	:	पंजाब विधान सभा के चुनाव में हार।
(14 नवम्बर)	:	अम्बाला डिवीजन कांग्रेस कमेटी के प्रचार मंत्री नियुक्त।
1938	:	हिसार में 'गोरक्षिणी सभा' की स्थापना।
(3 अप्रैल)	:	हिसार जिला कांग्रेस कमेटी के जनरल सैक्रेटरी नियुक्त।
(16 सितम्बर)	:	महात्मा गांधी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं से दिल्ली में भेंट।
(29 नवम्बर)	:	नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का लालाजी द्वारा स्थापित सातरोद स्कूल में आगमन।
1939	:	पिताजी का निधन।
1942 (17 जनवरी)	:	वर्धा में महात्मा गांधी के सान्निध्य में हुए गोसेवा सम्मेलन में सक्रिय भाग लेना।
(28 अगस्त)	:	'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान, सिरसा में गिरफ्तारी और एक वर्ष का कारावास।

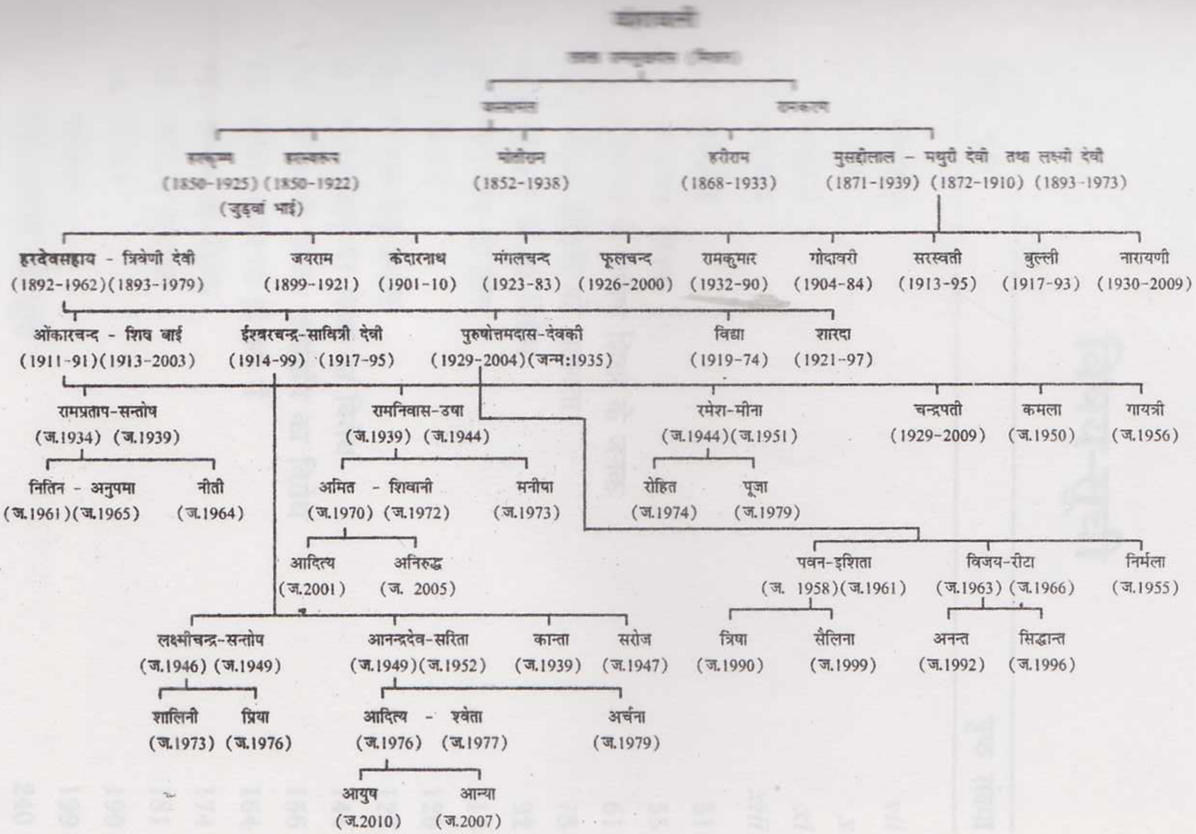

(नोट : इस वंशावली को लालाजी के पौत्र रामनिवास गुप्ता ने 13 अप्रैल 2011 को तैयार किया)

विषय-सूची

क्रम. लेख	पृष्ठ संख्या
लेखकीय	*vii*
आभार	*x*
कालक्रम	*xi*
वंशावली	*xiii*
1. पृष्ठभूमि	51
2. प्रारम्भिक जीवन	55
3. हरियाणा में ग्रामीण शिक्षा के जनक	61
4. अकाल पीड़ितों की सहायता	73
5. वनस्पति घी का विरोध	92
6. गो-महिमा के ज्ञाता	113
7. गो-वध ?	120
8. गो-रक्षा हेतु प्रयास	129
9. गोरक्षा-प्रश्न पर नेहरू का विरोध	144
10. गो-विरोधी प्रत्येक गतिविधि का विरोध	156
11. कांग्रेस-कार्यकर्त्ता के रूप में	164
12. कांग्रेस का विरोध	174
13. आखिरी मुकदमा	181
14. निष्कर्ष	190
परिशिष्ट	199
स्रोत-सामग्री की सूची	240
इण्डेक्स	246

लाला हरदेव सहाय (1892-1962)

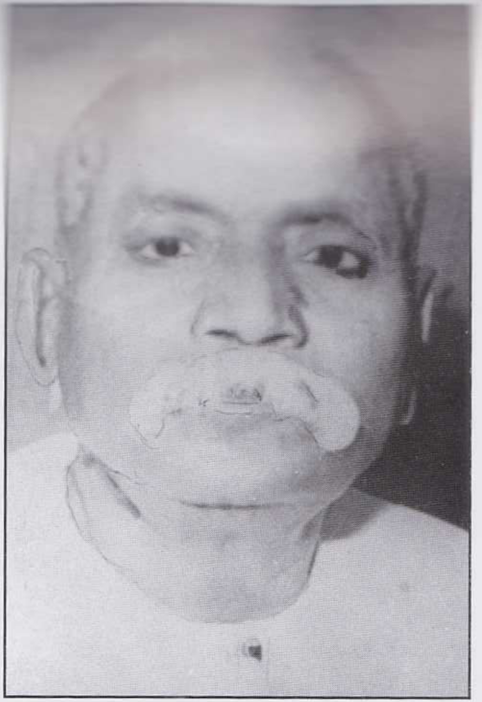

लालाजी एवम् उनकी धर्मपत्नी श्रीमती त्रिवेणी देवी

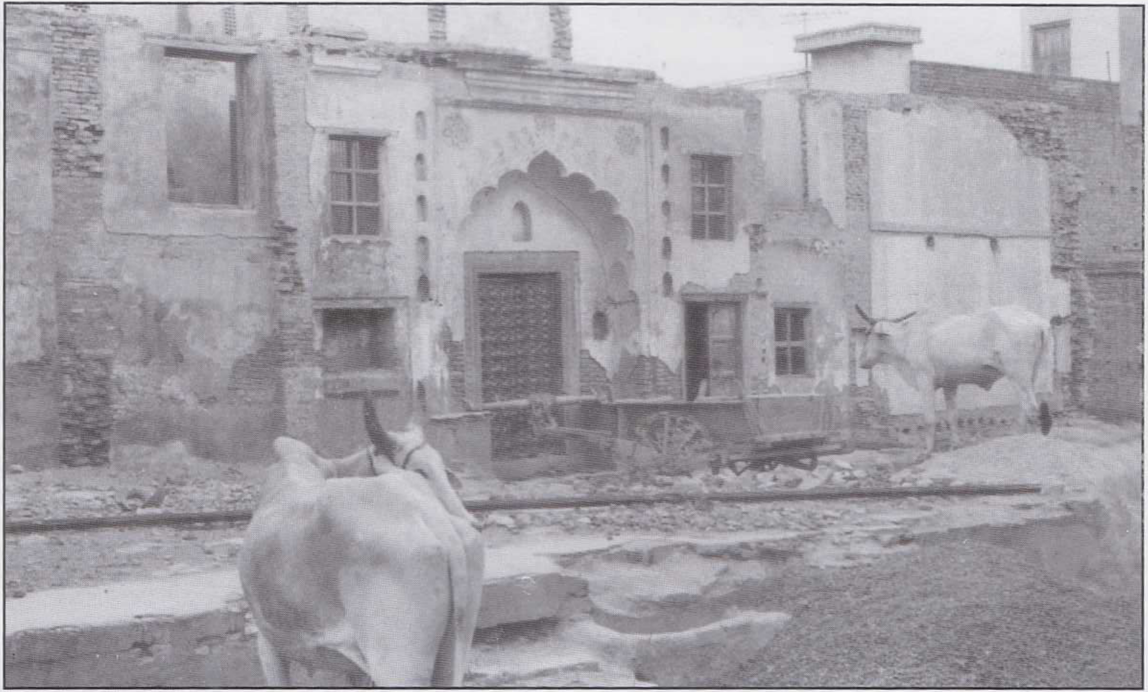

सातरोद गाँव की हवेली का बाहरी दृश्य, जिसमें लालाजी का 26.11.1892 को जन्म हुआ।

लालाजी के सहयोगी एवं चचेरे भाई,

विश्वनाथ एडवोकेट

लालाजी के ज्येष्ठ सुपुत्र : ओंकार चन्द

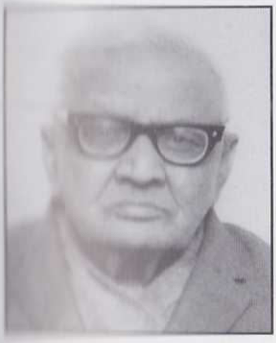

प्रो. ईश्वर चन्द्र (सुपुत्र)

पुरुषोत्तम दास (सुपुत्र)

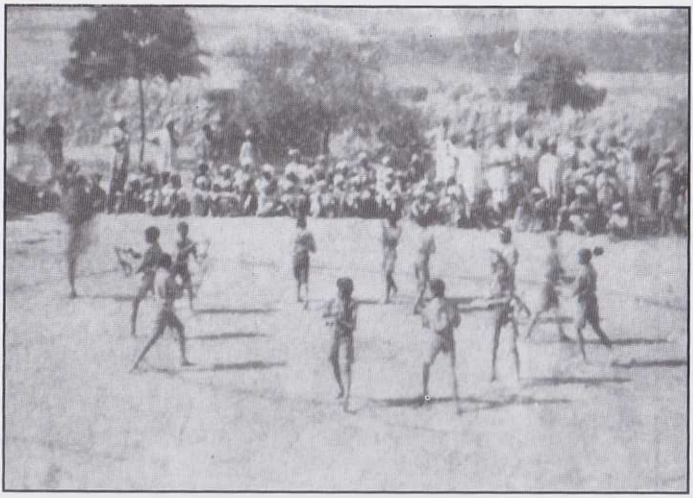

लालाजी द्वारा स्थापित, सातरोद स्कूल के छात्र
'लाठी-खेल' का प्रदर्शन करते हुए।

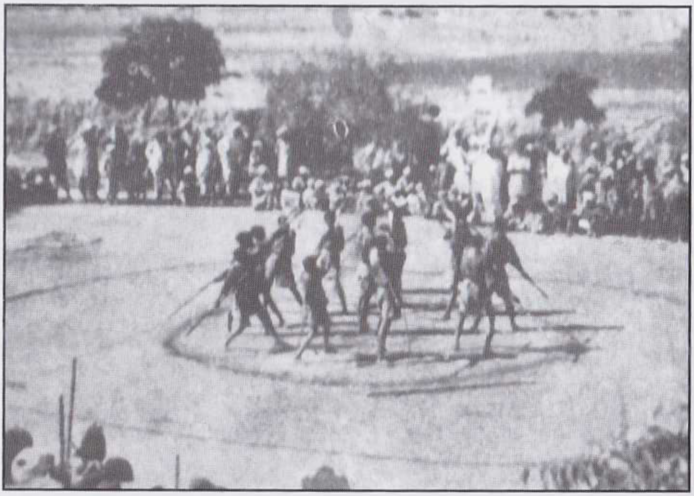

सातरोद स्कूल के छात्र
'लेजिम' खेल का प्रदर्शन करते हुए।

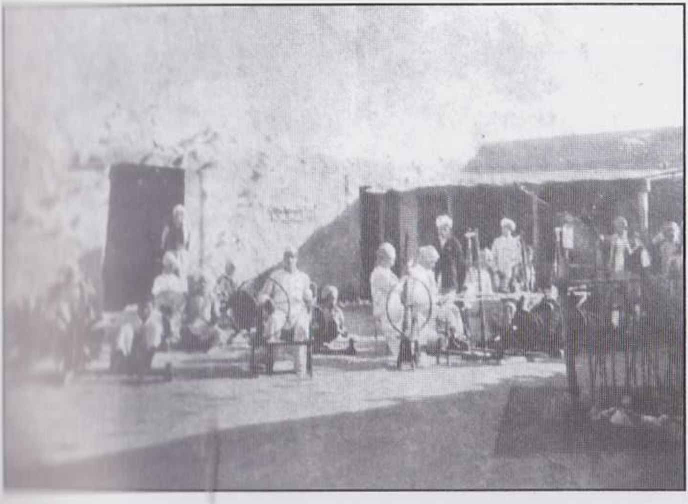

लालाजी द्वारा स्थापित, सातरोद गांव की लाजपतराय शिल्पशाला के कुछ छात्र ऊन-सूत की कताई करते व निवार बुनते हुए।

शिल्पशाला में तैयार किये गये वस्त्रों की प्रदर्शनी।

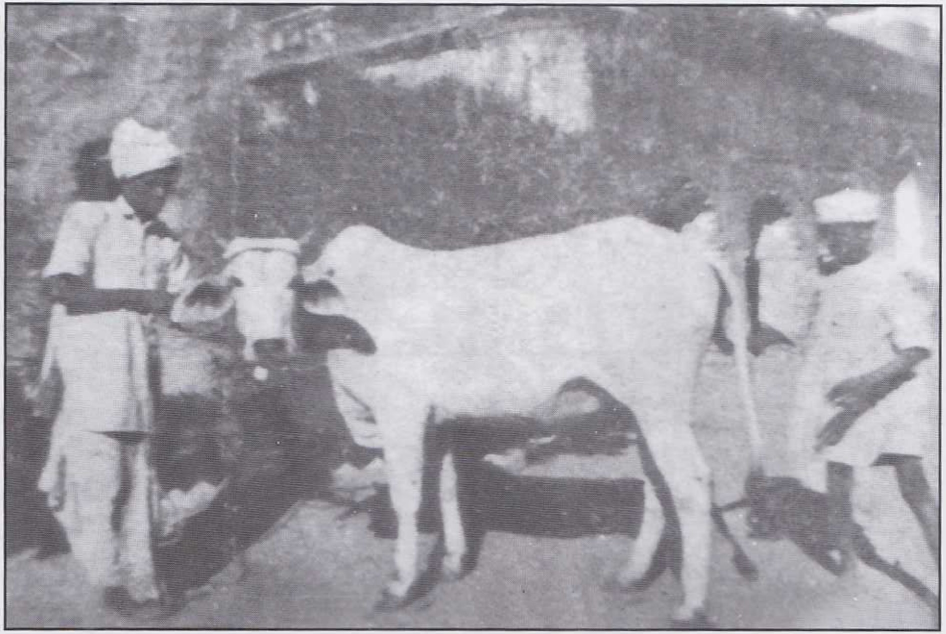

सातरोद स्कूल की गोशाला में बढ़िया नस्ल की
'शीला' नामक गाय।

‘लाजपतराय शिल्पशाला’ के खण्डहर

सातरोद स्कूल/शिल्पशाला में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का 29.11.1938 को आगमन

बार्यीं ओर से–पं॰ हरदत्त राय, चौ॰ रामसरूप कागदाना, जे॰एन॰ मानकर, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, डॉ॰ गोपीचन्द भार्गव, बख्शी रामकृष्ण, पं॰ नेकीराम शर्मा, पं॰ ठाकुरदास भार्गव, ला॰ मामन राम व पं॰ जयनारायण।

सातरोद स्कूल/शिल्पशाला में पं॰ जवाहरलाल नेहरू का 21.1.1946 को आगमन

बायीं ओर से–ला॰ हरदेव सहाय (पगड़ी पहने), चौ॰ साहब राम, पं॰ विश्वेश्वर, पं॰ नेकीराम शर्मा, कैप्टन रणजीत सिंह व पं॰ जवाहरलाल नेहरू।

सातरोद स्कूल/शिल्पशाला के सम्बन्ध में, नेताजी व नेहरूजी की हस्तलिखित सम्मतियाँ

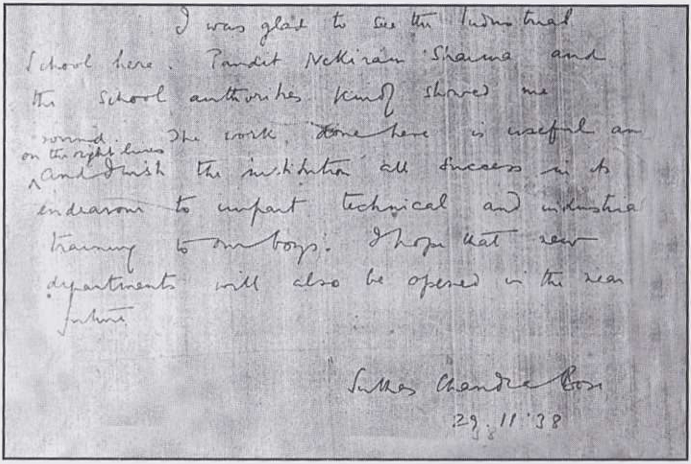

I was glad to see the Industrial School here. Pandit Nekiram Sharma and the school authorities kindly showed me round. The work done here is useful and on the right lines and I wish the institution all success in its endeavours to impart technical and industrial training to our boys. I hope that new departments will also be opened in the near future.

Subhas Chandra Bose
29.11.38

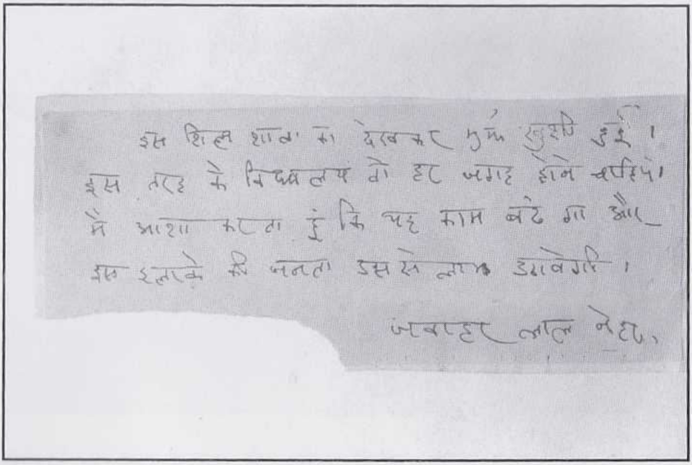

इस शिल्पशाला को देखकर मुझे खुशी हुई। इस तरह के विद्यालय तो हर जगह होने चाहियें। मैं आशा करता हूं कि यह काम बढ़ेगा और इस इलाके की जनता इससे लाभ उठावेगी।

जवाहरलाल नेहरु

लालाजी द्वारा स्थापित विद्या प्रचारिणी सभा के स्कूलों से पढ़कर निकले कुछ महानुभाव

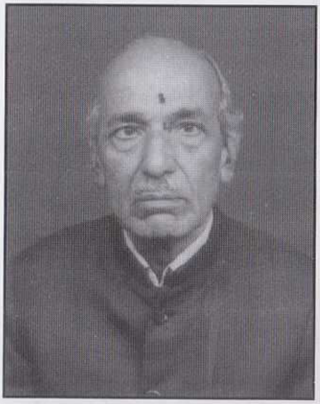

एम.डी.यू. (रोहतक)
के पूर्व कुलपति डॉ॰ रामगोपाल

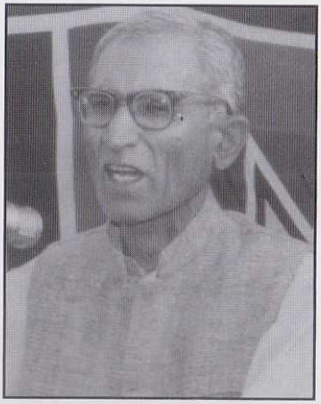

साहित्यकार श्री रघुनाथ प्रियदर्शी

समाजसेवी एवं स्वतंत्रता-सेनानी
भगत रामेश्वरदास

उद्योगपति श्री रामप्रताप गुप्ता

हरियाणा के त्रिमूर्ति जिन्होंने कन्धे से कन्धा मिलाकर पीड़ित समाज की सेवा की

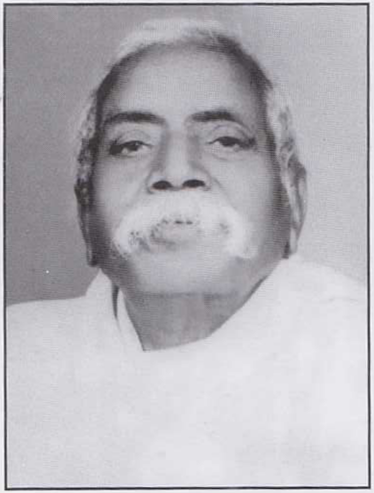

ला॰ हरदेव सहाय (1892-1962)

पं॰ ठाकुरदास भार्गव (1886-1962)

पं॰ नेकीराम शर्मा (1887-1956)

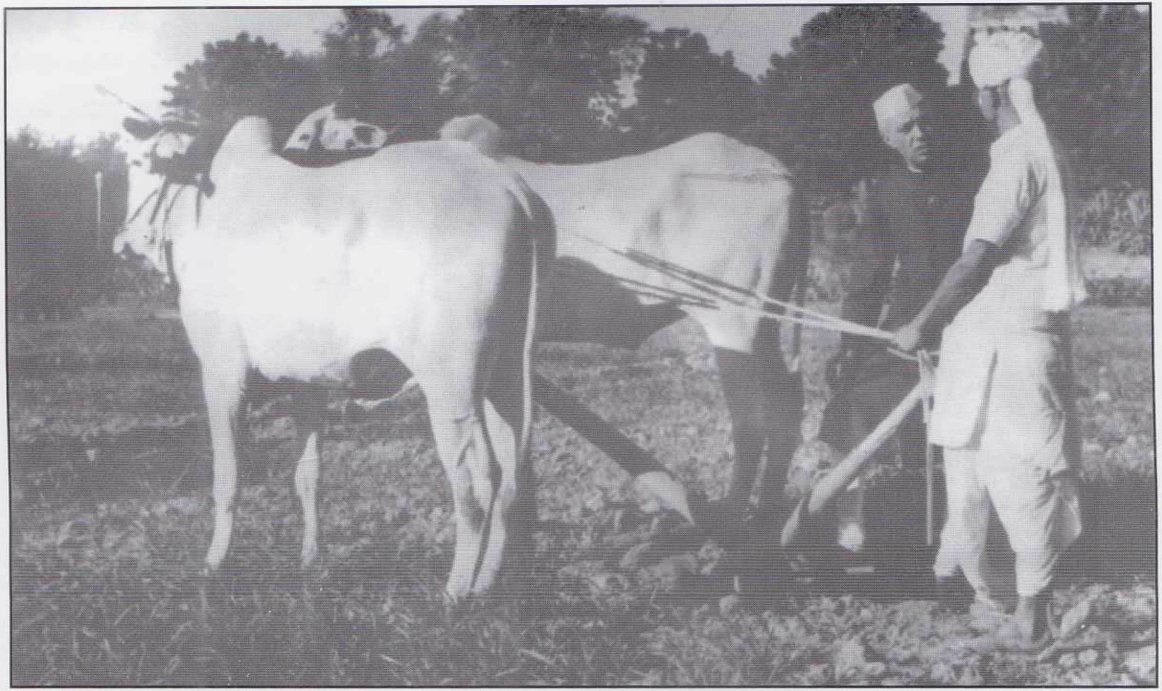

कांग्रेस के चुनाव-चिह्न – दो बैलों की जोड़ी – एवम् एक किसान के साथ नेहरूजी।

27.8.1953 को प्रधानमंत्री नेहरू से गोरक्षा प्रश्न पर मिलने हेतु 11 सदस्यी शिष्ट मण्डल (संसद भवन, नई दिल्ली)

प्रथम पंक्ति (बायीं ओर से) : परशु राम म्हात्रे, सतगुरु प्रतापसिंह नामधारी, सेठ गोविन्द दास (सांसद), श्रीमती जानकी देवी बजाज;

दूसरी पंक्ति : जे॰एन॰ मानकर, आनन्द राज सुराना, लालाजी, पं॰ ठाकुरदास भार्गव (सांसद), गजाधर सोमानी (सांसद);

तीसरी पंक्ति : सरदार अमर सिंह (सांसद) व राधाकृष्ण बजाज

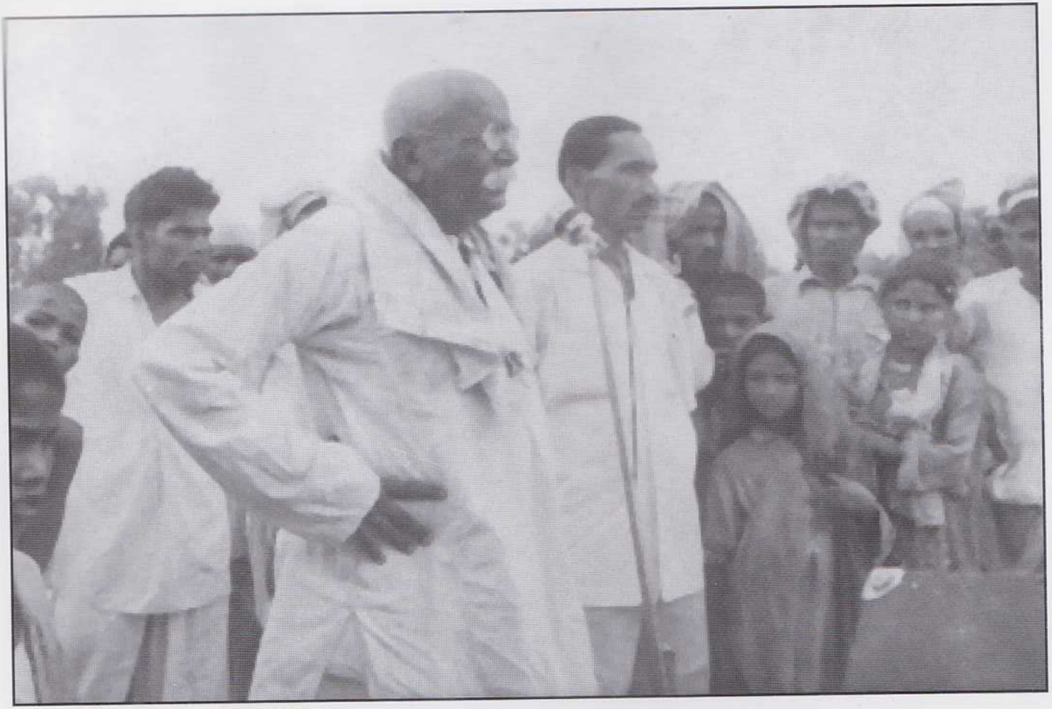

लालाजी भाषण की मुद्रा में।

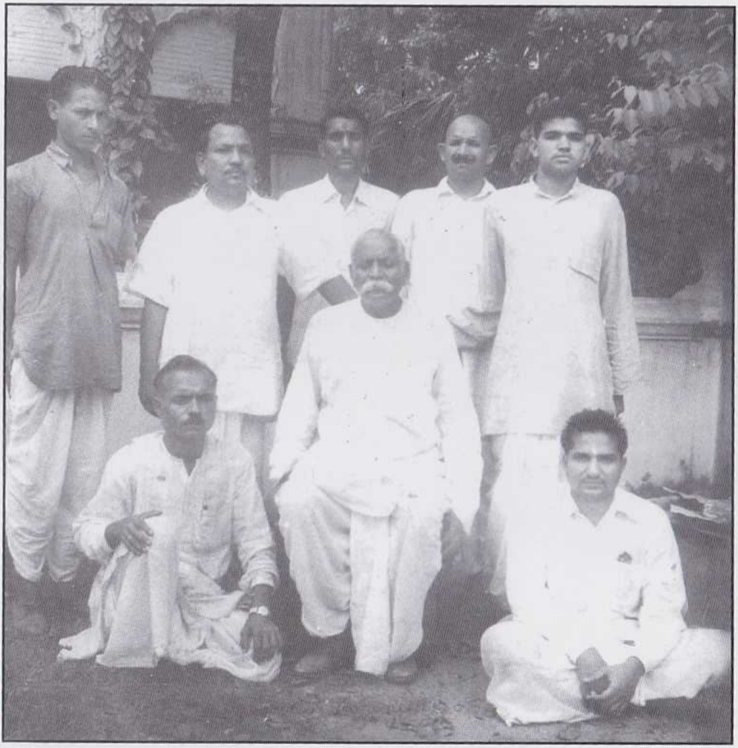

28.7.1956 को गोवाहटी में 'आसाम गोरक्षा समिति'
के कार्यकर्ताओं के साथ, कुर्सी पर बैठे लालाजी।

मुम्बई में गोरक्षा चित्र-प्रदर्शनी का, हरिदेव ब्रह्मचारी व अन्य गोसेवकों के साथ, अवलोकन करते हुए, लालाजी।

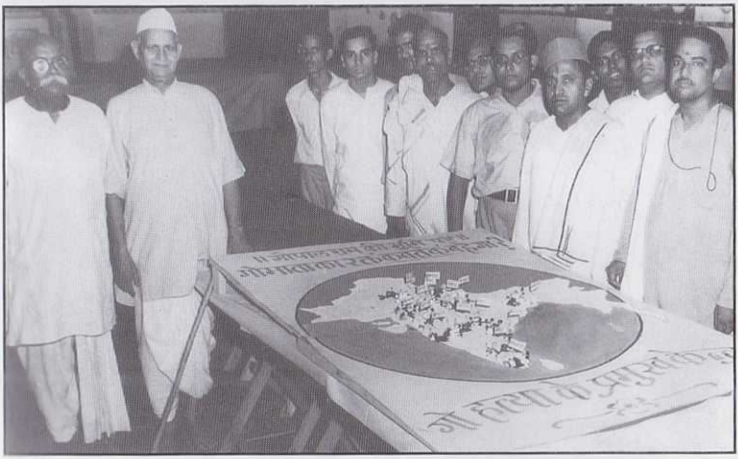

राजमुन्दरी (आन्ध्र प्रदेश) में 21 मई से 3 जून 1956 को लगाई गई गोरक्षा चित्र प्रदर्शनी।
मध्य में भारत का मानचित्र है जिसमें दर्शाया गया है कि किन-किन क्षेत्रों में गोवध होता है। लालाजी एकदम बायीं ओर खड़े हैं।

अप्रैल 1956 में हरिद्वार में हुए अर्द्ध-कुम्भ मेले का दृश्य :
गोभक्तों के मध्य लालाजी तथा बछड़ों के साथ
हरिदेव ब्रह्मचारी तथा पं० धनपति शर्मा।

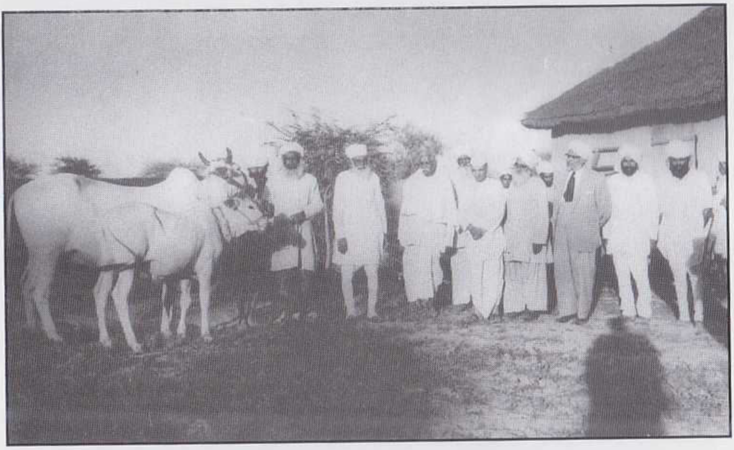

नवम्बर 1958 में श्री जीवन नगर (सिरसा) की एक गो-प्रदर्शनी में
लालाजी की दाईं ओर सतगुरु प्रताप सिंह,
और बाईं ओर सांसद रामनारायण चौधरी, व अन्य गो-प्रेमी।

अनेक गोभक्तों के अतिरिक्त, लालाजी, वेदों के विद्वान् श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के साथ धामपुर, उत्तराखण्ड, में (दोनों के हाथों में फूलमालायें)

1 जुलाई 1959 को 'धर्म-रत्न' की उपाधि से सम्मानित करता हुआ, लालाजी को दिया गया प्रमाण पत्र

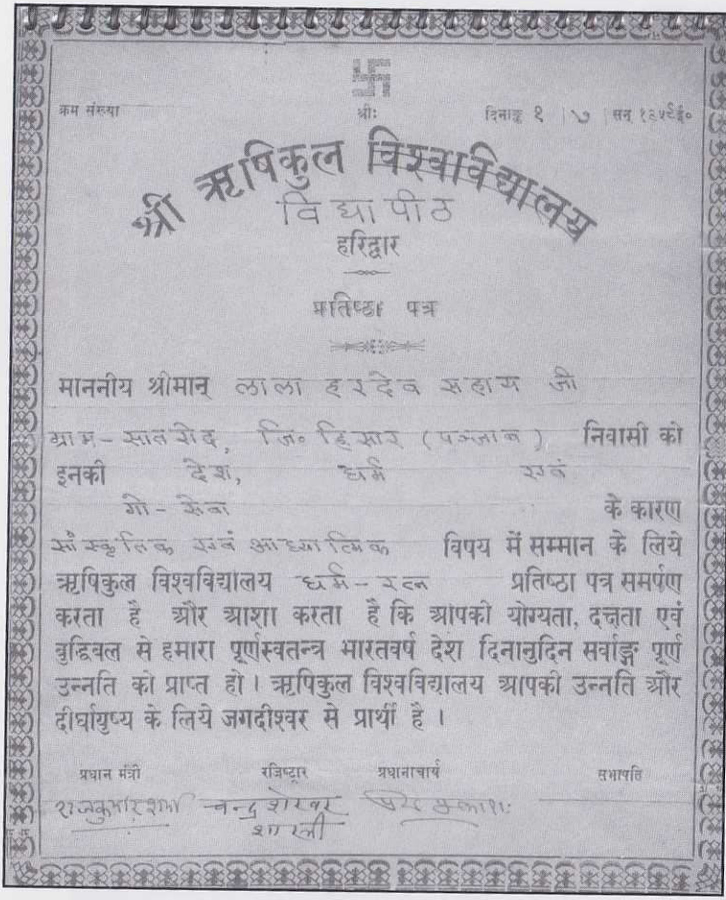
क्रम संख्या

श्रीः

दिनाङ्क १ | ७ | सन् १९५९ ई०

श्री ऋषिकुल विश्वविद्यालय

विद्यापीठ

हरिद्वार

प्रतिष्ठा पत्र

माननीय श्रीमान् लाला हरदेव सहाय जी

ग्राम- सातरोद, जि० हिसार (पञ्जाब) निवासी को

इनकी देश, धर्म एवं

गो- सेवा के कारण

सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विषय में सम्मान के लिये

ऋषिकुल विश्वविद्यालय धर्म- रत्न प्रतिष्ठा पत्र समर्पण करता है और आशा करता है कि आपकी योग्यता, दक्षता एवं बुद्धिवल से हमारा पूर्णस्वतन्त्र भारतवर्ष देश दिनानुदिन सर्वाङ्ग पूर्ण उन्नति को प्राप्त हो। ऋषिकुल विश्वविद्यालय आपकी उन्नति और दीर्घायुष्य के लिये जगदीश्वर से प्रार्थी है।

प्रधान मंत्री	रजिस्ट्रार	प्रधानाचार्य	सभापति
राजकुमार शर्मा	चन्द्रशेखर शास्त्री	प्रियव्रत प्रकाशः	

लालाजी को उनके पौत्र रामप्रताप के शुभ-विवाह के सुअवसर पर,

बधाई देते हुए राष्ट्रपति

डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद का पत्र, दिनांक 13.7.1959

राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली ।

जुलाई १३, १६५६

प्रिय श्री हरदेव सहाय जी,

आपका निमन्त्रण-पत्र मिला, धन्यवाद।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री गमप्रताप का शुभ-विवाह दिनांक १४ जुलाई, १६५६ को आयुष्मती कुमारी सन्तोष के साथ सम्पन्न होने जा रहा हैं। विवाह के मंगलमय अवसर पर वर-वधू के लिये मैं अपनी शुभकामनायें भेजता हूं। परमात्मा इन दोनों को सदा सुखी, स्वस्थ और सम्पन्न रखें यही मेरी प्रार्थना है।

आपका,

राजेन्द्र प्रसाद

श्री हरदेव सहाय,
[illegible] सदर थाना रोड,
दिल्ली-६

लालाजी का परिजनों के साथ उपलब्ध एकमात्र चित्र

(दिल्ली में 14.7.1959 को लालाजी के पौत्र रामप्रताप के विवाह में 'फेरों' का दृश्य)

प्रथम पंक्ति में बायीं ओर से–लालाजी के दामाद हरीशचन्द्र, लालाजी के चचेरे भाई इन्द्राजमल (पगड़ी पहने), लालाजी स्वयं, लालाजी के चचेरे भाई विश्वनाथ एडवोकेट;

पीछे की पंक्ति में बायीं ओर से–रामप्रताप के ममेरे भाई मनोहरलाल, लालाजी के पुत्र पुरुषोत्तमदास, लालाजी के ज्येष्ठ पुत्र ओंकारचंद, रामप्रताप के जीजा नानूराम।

30.9.1962 (रविवार) को हिसार के सिविल अस्पताल में
'हे राम, हे राम' कहते हुए, प्रातः 3 बजकर 10 मिनट पर लालाजी का निधन।

लालाजी के पैतृक गाँव सातरोद में उनके पार्थिव शरीर के इर्द-गिर्द सगे-सम्बन्धी व श्रद्धालु

सबसे आगे बैठे हुए, लालाजी के निकटतम सहयोगी – चौ॰ सुखदेव सिंह – और
उनकी दायीं ओर लालाजी के ज्येष्ठ पुत्र ओंकारचंद (चश्मा पहने) व पं॰ हरदत्तराय (पगड़ी पहने);
गो-चित्र की दायीं ओर लालाजी के चचेरे भाई विश्वनाथ एडवोकेट व तीनों भाई – मगलचंद, रामकुमार व फूलचंद।
बायीं ओर से खड़े : लालाजी के भतीजे प्रेमशंकर मित्तल (पेंट-कमीज पहने) व उनकी बायीं ओर लालाजी के चचेरे भाई इन्द्राजमल।

दिल्ली में आयोजित शोक-सभा हेतु, पैम्फलेट

शोक! शोक!! महा शोक!!!

स्वातन्त्र्य संग्राम के सेनानी, सुप्रसिद्ध गो-भक्त

ला. हरदेव सहाय जी

का हिसार में दिनांक ३० सितम्बर १९६२ रविवार

प्रातःकाल ३ बज कर १० मिनिट पर

स्वर्गवास हो गया।

शोक सभा

दीवानहाल में १ अक्तूबर १९६२ सोमवार

रात्रि ७।। बजे होगी।

अधिकाधिक संख्या में पधार कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें।

मन्त्री, गो-हत्या विरोध समिति, दिल्ली

लालाजी की जन्मस्थली पर उनकी प्रतिमा का रामनवमी (20.4.1964) के शुभअवसर पर प्रभुदत्त ब्रह्मचारी द्वारा, स्वामी केशवानन्द की अध्यक्षता में, हुए अनावरण का दृश्य

प्रतिमा के नीचे पत्र पढ़ते हुए प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, उनकी बायीं ओर स्वामी केशवानंद, टोपी पहने लालाजी के चचेरे भाई विश्वनाथ एडवोकेट, उनके समक्ष टोपी पहने लालाजी के भाई मंगलचंद, उनके पीछे चश्मा पहने लालाजी के पुत्र पुरुषोत्तमदास, उनकी बायीं ओर टोपी व चश्मा पहने लालाजी के ज्येष्ठ पुत्र ओंकारचंद, पगड़ी पहने जे॰एन॰ मानकर, टोपी व चश्मा पहने विश्वम्भर प्रसाद शर्मा, माइक के समक्ष नामधारी गुरु बीरसिंह तथा काली टोपी पहने लाला हंसराज गुप्ता।

युवा पीढ़ी को मूक सन्देश देती हुई, सातरोद गाँव (हिसार) के राजकीय सीनियर सेकण्डरी स्कूल में स्थापित लालाजी की प्रतिमा।

शिक्षा-प्रेमी लालाजी की याद में, देश की राजधानी का एक स्कूल।

लालाजी की स्मृति में दिल्ली की एक प्रसिद्ध सड़क – आई॰एस॰बी॰टी॰ से तीस हजारी कोर्ट – का नाम 'लाला हरदेव सहाय मार्ग' रखा गया जिसका उद्घाटन दिल्ली के मुख्यमंत्री साहिब सिंह वर्मा द्वारा 3 मार्च 1997 को किया गया।

लालाजी पर प्रकाशित पुस्तक का हिसार नगर में 27.11.1994 को स्वतंत्रता-सेनानी श्री बलवंतराय तायल द्वारा विमोचन। उनकी बायीं ओर खड़ी हैं, श्रीमती पुष्पा।

इसी अवसर पर उपस्थित कुछ गण-मान्य व्यक्ति

बायीं ओर से पं० कोकचंद शास्त्री, सेठ शिवराम जिन्दल, स्वतंत्रता-सेनानी श्री बलवंतराय तायल, प्रसिद्ध उद्योगपति व नगर विधायक श्री ओमप्रकाश जिन्दल एवं किसान नेता चौ० लाजपतराय अलखपुरा।

लालाजी पर लिखी पुस्तक का विपक्ष के नेता एवं भावी प्रधानमंत्री
श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा नई दिल्ली स्थित कन्सटिच्यूशन क्लब में 20.5.1995 को लोकार्पण

बायीं ओर से : पुस्तक के लेखक डॉ॰ एम॰एम॰ जुनेजा, आर॰एस॰एस॰ प्रमुख प्रो॰ राजेन्द्र सिंह,
श्री वाजपेयी तथा दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री मदनलाल खुराना।

मुख्य अतिथि के रूप में, श्री वाजपेयी भाषण-मुद्रा में

बायीं ओर से : सिकन्दर बख्त (सांसद), प्रेमचंद गुप्ता, लालाजी के भतीजे मुन्शीराम मित्तल, गुमानमल लोढा (सांसद एवं जीव-जन्तु कल्याण बोर्ड के अध्यक्ष) व उनके पीछे लालाजी के भतीजे शिव शंकर अग्रवाल, प्रो॰ राजेन्द्र सिंह, श्री वाजपेयी व ओमस्वरूप ब्रह्मचारी।

माइक पर बोलते हुए, आर॰एस॰एस॰ प्रमुख प्रो॰ राजेन्द्र सिंह

बायीं ओर से : मुन्शीराम, प्रेमचंद गुप्ता, शिव शंकर अग्रवाल, गुमानमल लोढा व उनके पीछे लालाजी के पौत्र रामप्रताप, प्रो॰ राजेन्द्र सिंह, श्री वाजपेयी एवम् एम॰एम॰ जुनेजा।

लालाजी के सम्मान में खड़े होकर, समारोह का समापन

बायीं ओर से तीसरे : मुन्शीराम, प्रेमचंद गुप्ता, गुमानमल लोढा, रामप्रताप, प्रो॰ राजेन्द्र सिंह, जयनारायण खण्डेलवाल व श्री वाजपेयी।

लालाजी के पौत्र श्री रामनिवास गुप्ता,
जिनकी निष्ठा एवं सतप्रयास से प्रस्तुत पुस्तक
का प्रकाशन संभव हुआ।

पहला अध्याय

पृष्ठभूमि

लाला हरदेव सहाय का जन्म हरियाणा के सुप्रसिद्ध नगर हिसार के निकट 'सातरोद खुर्द' नामक गाँव में 26 नवम्बर सन् 1892 को हुआ। यह गाँव दिल्ली से 97 मील पश्चिम में राष्ट्रीय राजमार्ग नं० 10 पर स्थित है और हिसार शहर से मात्र पाँच मील की दूरी पर पूर्व में बसा हुआ है।

हिसार शहर की स्थापना सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने 1354 ई. में की थी। कहा जाता है कि सातरोद खुर्द गाँव ईसवी की सोलहवीं सदी के उत्तरार्ध में बसा।[1] आरम्भ में यहाँ सात छोटे-छोटे खेड़े थे जिन्हें 'सात खेड़ा' कहते थे। कालान्तर में उनमें से केवल दो–'सातरोद खुर्द' और 'सातरोद कलां'–ही बच पाये। 'खुर्द' का अर्थ है 'छोटी' और 'कलां' का 'बड़ी'। राजमार्ग पर स्थित होने के कारण सातरोद खुर्द का महत्त्व बढ़ता गया और अब केवल सातरोद कहने पर सातरोद खुर्द ही जाना जाता है।

लाला हरदेव सहाय के जन्म के समय सातरोद गाँव हिसार जिले के महत्त्वपूर्ण गाँवों में से एक था। इसके अधिकतर निवासी हिन्दू थे जो एक-दूसरे से मिलजुल कर रहते थे। गाँव में अन्य जातियों की अपेक्षा, वैश्यों या बनियों की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। इनमें से कुछ दुकानदार थे और जो अधिक सम्पन्न थे वे साहूकारे का धन्धा करते थे। इनमें से कुछ जमींदार भी थे जो जमीन को बटाई पर खेती के लिये देते थे। वास्तव में बनिया गाँव की आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र था। आरम्भ से ही सातरोद गाँव के अधिकतर निवासी हिन्दू जाट रहे हैं। वे मूलतः किसान थे। इनका पैसे का लेन-देन अधिकतर गाँव के बनियों से होता था। जाट को रुपया उधार देते समय बनिये का उद्देश्य होता था मुनाफा कमाना और जाट का सदैव प्रयास होता था जमीन को वापस लेना।

आमतौर पर जाट ऐसी शर्तें मानने के लिये तैयार नहीं होता था जिनसे उसे अपनी जमीन से वंचित होना पड़े। ब्राह्मण यद्यपि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं थे फिर भी गाँव की सभी जातियों के लोग उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे। उनका मुख्य व्यवसाय पढ़ाना, उपदेश देना और पुरोहिती करना था। गाँव की निम्न जातियों की सामाजिक एवं आर्थिक दशा दयनीय थी।

हरियाणा प्रांत के हिसार क्षेत्र का उत्तर मुगलकाल में इसकी आर्थिक दशा बिगड़ने लगी और यह इलाका अकालों का क्षेत्र बन गया। जब से अकालों का विवरण उपलब्ध है यहाँ का पहला भयानक अकाल सन् 1783 ई. में पड़ा। इसे 'चालीसा अकाल' भी कहते हैं क्योंकि यह संवत् 1840 विक्रमी में पड़ा था। सन् 1800 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस क्षेत्र का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। अंग्रेज तो शोषण करने के लिए आए थे। उन्होंने अकाल की समस्या को हल करने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। फलतः अकाल पड़ना अब इस इलाके के लिए एक आम बात हो गई थी। इनमें से जो भयंकर अकाल पड़े उनके वर्ष हैं–1860-61, 1869-70, 1896-97, 1899-1900 और 1938-40। हाँ, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब 1954 में भाखड़ा नहर बनी और उसने इस इलाके की प्यासी धरती को सींचना शुरू किया, तब से अकाल पड़ना लगभग अतीत की कहानी ही रह गई है।

जो इलाका आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ हो, वह भला शिक्षा के क्षेत्र में कैसे आगे हो सकता है? सन् 1891 की जनगणना के अनुसार, हिसार जिले (जिसमें आज का हिसार, भिवानी, सिरसा व फतेहाबाद जिला भी सम्मिलित था) की साक्षरता का प्रतिशत केवल 2.3 था,[2] और उन दिनों हिसार जिले में एक भी समाचार पत्र प्रकाशित नहीं होता था।

उन्नीसवीं सदी के आखिरी वर्षों में, भारत में पुनरुत्थान का समय आया जिसमें सामाजिक-धार्मिक बदलाव महसूस किये जाने लगा। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 7 अप्रैल 1875 को मुंबई में 'आर्य समाज' की स्थापना की। उसके बाद उन्होंने भारतवर्ष, विशेषकर संयुक्त पंजाब जिसमें आज का हरियाणा भी शामिल था, का तूफानी दौरा किया। आर्य समाज

की पहली शाखा 24 जून 1877 को लाहौर में खोली गई। हरियाणा में स्वामी जी पहली बार 17 जुलाई 1878 को अम्बाला पधारे, उसके बाद 1880 में रेवाड़ी आए। तदनन्तर सन् 1886 में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के नेतृत्व में हिसार में भी आर्य समाज की स्थापना की गई। उन दिनों लाला लाजपतराय यहाँ वकालत करते थे।[3] समय बीतने पर हिसार, आर्य समाज आन्दोलन का शक्तिशाली गढ़ बन गया। आर्यसमाज ने निःसन्देह इस क्षेत्र में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक चेतना जगाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

आर्य समाज के बढ़ते हुए प्रभाव के साथ-साथ सनातन धर्म के नेता भी सक्रिय हो गए। उन्होंने हरियाणा के विभिन्न जिलों में सनातन धर्म की सभाओं का आयोजन किया। झज्जर के पंडित दीनदयाल वाचस्पति, सनातन धर्म सभा के प्रमुख प्रचारक थे। सनातन धर्म के द्वारा चलाए गए आन्दोलन को भी लोकप्रियता मिली, विशेषकर ब्राह्मणों में और वैश्यों में। हिसार जिले में आर्य समाज के बाद, सनातन धर्म में ही लोगों की अधिक आस्था थी।

अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हिसार जिले का राजनैतिक स्वरूप क्या था? हिसार का राजनैतिक इतिहास पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भिक दिनों से काफी जुड़ा हुआ है। यह सर्व विदित है कि लाजपतराय ने हिसार में सन् 1886 से 1892 तक वकालत की। इन्हीं दिनों लाजपतराय के साथ ला॰ हरदेव सहाय के परिजनों के सामाजिक सम्बन्धों का भी जिक्र मिलता है।[4]

लाजपतराय ने अपना व्यावसायिक जीवन अपने पैतृक कस्बे जगरांव की दीवानी अदालत में मुख्तियारी से शुरू किया था। सन् 1882 में वह रोहतक चले आए जहाँ उनके पिता मुंशी राधाकृष्ण अध्यापक थे। रोहतक में रहते हुए लाजपतराय ने सन् 1886 में पंजाब यूनिवर्सिटी से वकालत की परीक्षा पास की। अब उन्हें वकालत करने की पात्रता मिल गई। शीघ्र ही उन्हें हिसार की जिला अदालत में एक मुकदमें की पैरवी करने का मौका मिला। यह मुकदमा हिसार के लाला रामजीदास तायल का सरकार

के विरुद्ध था। इस मुकदमें को जीतने के बाद, लाजपतराय ने हिसार को अपना मुख्यालय बनाने का फैसला किया। जब तक वह लाहौर कोर्ट में वकालत करने के पात्र नहीं बन गए, तब तक हिसार में ही रहे।[5]

लाजपतराय की हिसार में वकील के रूप में उपस्थिति का वह समय था जब इण्डियन नेशनल कांग्रेस का हाल ही में गठन हुआ था। लाजपतराय के प्रयत्नों के फलस्वरूप हिसार भी नव-गठित कांग्रेस के सम्पर्क में आया। दिसम्बर 1888 में पहली बार लाला लाजपतराय, लाला छबीलदास तायल, सेठ गौरीशंकर और बाबू चूड़ामणि जैसे नेताओं ने इण्डियन नेशनल कांग्रेस में हिसार की जनता का प्रतिनिधित्व किया।[6] इलाहाबाद में कांग्रेस का यह तीसरा ऐतिहासिक अधिवेशन था। तत्पश्चात् कांग्रेस आन्दोलन से हिसार जिले का सम्बन्ध निरन्तर मजबूत होता गया।

सन् 1892 में, ज्योंही लाला लाजपतराय लाहौर स्थित 'पंजाब चीफ कोर्ट' में वकालत करने के योग्य हुए, वह हिसार छोड़कर लाहौर चले गए। इसी वर्ष, हिसार से केवल पाँच मील की दूरी पर, सातरोद गाँव में हरदेव सहाय नामक बालक का जन्म हुआ जो आगे चलकर अपने क्षेत्र में ग्रामीण शिक्षा का जनक, अपने प्रांत का महान स्वतंत्रता-सेनानी तथा अपने देश का महानतम गोरक्षक बना।

सन्दर्भ

1. सातरोद गाँव के कुछ वृद्ध व्यक्तियों से लेखक का सन् 1993 में साक्षात्कार.
2. *The District Gazetteer of Hisar* (Lahore, 1915), p. 238.
3. M. M. Juneja, *History of Hisar* (Hisar, 1989), pp. 85-87.
4. ला. हरदेव सहाय के प्रशंसक, फतहचन्द आराधक, का लेख जो *'साप्ताहिक हिन्दूस्तान,* 28 अक्तूबर 1962, में छपा.
5. *Lajpat Rai Autobiographical Writings* (Delhi, 1965), p. 36.
6. वही.

प्रारम्भिक जीवन

लाला हरदेव सहाय का जन्म हिसार जिले के सातरोद गाँव के एक सम्पन्न वैश्य परिवार में हुआ। हरदेव सहाय के जन्म के कुछ ही दशक पहले उनके पूर्वज सातरोद गाँव में आकर बस गए थे। वे मूलतः बीकानेर रियासत के तारा नगर (जिसे रीनी भी कहते थे) कस्बे के निवासी थे।[1] अब यह कस्बा राजस्थान के चूरू जिले में पड़ता है।

हरदेव सहाय के पिता लाला मुसद्दीलाल मित्तल एक बड़े संयुक्त परिवार में रहते थे। हरदेव सहाय के जन्म के समय लाला मुसद्दीलाल अपने माता-पिता के अतिरिक्त, अपने चार बड़े भाइयों—हरकृष्ण, हरस्वरूप, मोतीराम और हरीराम—के परिवारों के साथ रहते थे। इस संयुक्त परिवार में ला॰ मुसद्दीलाल के चाचा लाला रामकरण का परिवार भी रहता था। इस प्रकार के संयुक्त परिवार का अनुकरण, आज के युग में देखना दुर्लभ है।

लाला मुसद्दीलाल का परिवार साहूकारे का पैतृक व्यवसाय करता था। इस व्यवसाय से इन्होंने लगभग 4,000 एकड़ जमीन प्राप्त कर ली थी। इसके अलावा कुछ गाँवों जैसे डाबड़ा, लाडवा, खैरमपुर, पंधाल, सातरोद खुर्द और सातरोद कलां में भी इस परिवार की विश्वेदारी (मालिकाना हक) थी।[2]

लाला मुसद्दीलाल का विवाह हिसार जिले के पेटवाड़ गाँव की मथुरी देवी से हुआ था। इस युवा दम्पति के दो बच्चे हुए, बेटी गोदावरी और बेटा हरदेव सहाय। मथुरी देवी की असामयिक मृत्यु हो जाने के कारण, मुसद्दीलाल ने घिराय गाँव की लक्ष्मी देवी से दूसरा विवाह किया, जिससे इनके घर तीन बेटे—मंगलचन्द, फूलचन्द और रामकुमार तथा तीन बेटियाँ—सरस्वती, बुल्ली और नारायणी का जन्म हुआ।

सातरोद का यह मित्तल परिवार आर्थिक दृष्टि से तो सम्पन्न था ही, इसमें लोक-उपकार की भी भावना थी। ये गाँव की चौपाल, कुआँ,

तालाब, मंदिर, धर्मशाला या पाठशाला बनाने के लिए खुले दिल से चन्दा देते थे। इसके अतिरिक्त, ये अतिथि सत्कार के लिए भी प्रसिद्ध थे। इस परिवार का अपना एक बाग था जहाँ पर प्रायः बड़ी संख्या में साधु ठहरते थे जिससे गाँव के लोगों को साधु सत्संग का लाभ मिलता था। वास्तव में यह बगीचा एक प्रकार से आश्रम बन गया था और मित्तल परिवार का विशाल भवन एक लंगर व भंडारे का स्थान जहाँ अनेक साधु-संत और ब्राह्मण अक्सर भोजन करते थे।[3]

लाला मुसद्दीलाल का परिवार सनातनधर्मी था। इनके यहाँ भगवान शिव, हनुमान तथा दूसरे हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा होती थी। यहाँ *रामायण* और *भगवद्गीता* जैसे धर्म ग्रन्थों का नियमित पाठ होता था। इस परिवार के पास सैकड़ों गायें थीं और विशेष अवसरों पर पारम्परिक ढंग से गो-पूजा भी की जाती थी।[4]

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि लाला मुसद्दीलाल का संयुक्त परिवार न केवल आर्थिक दृष्टि से, बल्कि सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से भी सम्पन्न था। हरदेव सहाय के जन्म के समय यह परिवार अपने आतिथ्य-सत्कार, लोकोपकार और धार्मिक भक्ति-भावना के सद्गुणों के लिए पूरे इलाके में विख्यात था।

अब प्रश्न यह उठता है कि बालक हरदेव सहाय के भविष्य के लिए, क्या व्यवस्था की गई? यद्यपि उन्हें पहले किसी स्कूल में दाखिल नहीं कराया गया फिर भी उनकी प्रारम्भिक शिक्षा के लिए पंडित उदमी राम को नियुक्त किया गया। हरदेव सहाय ने पंडित उदमी राम से हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा पाई।[5] आगे की शिक्षा प्राप्त करने के लिए बालक हरदेव सहाय को हिसार के किसी स्कूल में दाखिल किया गया। ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने मिडिल स्तर तक शिक्षा प्राप्त की। इसी के साथ-साथ उन्होंने उर्दू एवं अंग्रेजी का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया।[6] हरदेव सहाय एक पठन-शील व परिश्रमी छात्र थे। उन्होंने *रामायण* और *गीता* जैसे पवित्र ग्रन्थों को कण्ठस्थ कर लिया था। इन ग्रन्थों का उन पर गहरा असर भी पड़ा।

इस प्रकार के संस्कार उन्होंने अपने बच्चों को भी दिये। उदाहरणार्थ,

उनके पौत्र रामप्रताप एवं रामनिवास कहते हैं, लालाजी को पूरी *गीता* याद थी, उनकी प्रेरणा से हमें भी कुछ अध्याय याद हो गये थे और स्पर्धा में ईनाम भी मिले थे।

अभी हरदेव सहाय किशोरावस्था में ही थे कि उनका विवाह भिवानी के लाला रामचन्द्र वैद्य की सुपुत्री त्रिवेणी देवी के साथ कर दिया गया। इस दम्पति के घर तीन पुत्र—ओंकार चन्द्र, ईश्वर चन्द्र और पुरुषोत्तम दास तथा दो पुत्रियों—विद्या और शारदा का जन्म हुआ।

अब यहाँ पर एक अन्य प्रश्न यह उठता है कि अपने परिवार के जीवन-यापन के लिए हरदेव सहाय ने, क्या व्यवसाय अपनाया? सर्वप्रथम हरदेव सहाय सातरोद में अपना पारिवारिक व्यवसाय साहूकारा करने लगे। किन्तु बाद में वह कोई बड़ा व्यापार करने के लिए कलकत्ता (जिसे आज 'कोलकाता' कहते हैं) चले गए। घर से दो लाख रुपये लगाकर हरदेव सहाय ने अपने चचेरे भाई इन्द्राजमल के साथ कलकत्ते में जूट का व्यापार किया। किन्तु व्यापार में वह बुरी तरह असफल रहे। उनकी असफलता के दो कारण जान पड़ते हैं—पहला यह कि वह बहुत खुले हाथ से खर्च करते थे और दूसरा यह कि उस समय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में फैली राजनैतिक चेतना से वह प्रभावित हुए।[7]

हरदेव सहाय का कलकत्ते जाना उनके जीवन की एक उल्लेखनीय घटना थी। उन दिनों कलकत्ता के बार में एक प्रसिद्ध कहावत थी, "What Calcutta thinks today, India will think it tomorrow." उन दिनों कलकत्ता राष्ट्रीय गतिविधियों का एक बड़ा केन्द्र था, और युवक हरदेव सहाय उसके सशक्त प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। हरदेव सहाय सन् 1919 से 1921 तक कलकत्ते में रहे और यह समय ऐतिहासिक दृष्टि से नवीन भारत के निर्माण में विशेष महत्व रखता है।

व्यापार में असफलता के बाद हरदेव सहाय सन् 1921 में अपने गाँव सातरोद लौट आए।[8] किन्तु व्यापार की असफलता को उन्होंने जीवन की हार नहीं माना। उन दिनों गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन चल रहा था। अब हरदेव सहाय ने अपने देश, विशेषकर अपने पिछड़े हुए

इलाके, की सेवा करने का निश्चय किया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने हिसार के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता लाला श्यामलाल सत्याग्रही (1878-1957) के माध्यम से इण्डियन नेशनल कांग्रेस की सदस्यता प्राप्त की।[9] इसके बाद हरदेव सहाय हरियाणा केसरी पंडित नेकीराम शर्मा (1887-1956), जो संयुक्त पंजाब के वरिष्ठ कांग्रेसी नेता थे, के निकट सम्पर्क में आए।

जिन दिनों असहयोग आन्दोलन पूरे जोरों पर था, युवक हरदेव सहाय ने सन् 1921 में कटला रामलीला, हिसार में एक जोशीला भाषण दिया।[10] अतः इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और एक साल की कड़ी कैद की सजा सुनाई गई। इन्हें सजा काटने के लिए मियांवाली सैंट्रल जेल भेजा गया जहाँ आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता स्वामी श्रद्धानन्द (1856-1926) भी कैद थे। स्वामीजी के व्यक्तित्व का हरदेव सहाय पर गहरा असर पड़ा। स्वामीजी ने इन्हें हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए अपना जीवन समर्पित करने की प्रेरणा दी। इस कारावास ने हरदेव सहाय के देश-प्रेम को और प्रखर कर दिया। स्वामीजी के साथ बिताए हुए दिनों को याद करते हुए, हरदेव सहाय ने उनके 31वें बलिदान दिवस के अवसर पर 25 दिसम्बर 1957 को निम्नलिखित शब्द लिखे थे :

> सन् 1921-22 में स्वामी श्रद्धानन्द जी जब 'गुरु के बाग' के मामले में सिख हितों की रक्षा करते हुए जेल गए तब मियांवाली जेल में स्वामीजी के साथ मुझे कुछ महीने रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वामीजी के सत्संग से मुझे बहुत लाभ पहुँचा। दो बातों की ओर उन्होंने मेरा विशेष ध्यान दिलाया—हिन्दी और गोरक्षा। स्वामीजी की इस आज्ञा का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा और जेल से आने पर मैंने इनको कार्यान्वित करना प्रारम्भ कर दिया।[11]

प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र-निर्माण उसके संस्कारों पर निर्भर करता है। हरदेव सहाय का युवा मन भी उस समय की व्याप्त परिस्थितियों और आस-पास के प्रमुख व्यक्तियों के द्वारा ढाला गया। सबसे पहले हरदेव सहाय के युवा मन पर परिवार की आतिथ्य सत्कार की परम्परा और धर्मपरायणता का असर पड़ा। साथ ही गाँव में पधारे साधु-सन्तों

के सत्संग का भी उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके अध्यापकों, विशेषकर पंडित उदमीराम, ने भी बालक के भावी जीवन की दिशा-निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इसके अतिरिक्त, हरदेव सहाय पर स्वामी सत्यानन्द का भी गहरा प्रभाव पड़ा जिन्हें वे अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे।[12]

हरदेव सहाय के भावी जीवन को ढालने में राजनीतिक पुरुषों का भी योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। किसी राजनैतिक व्यक्ति से उनका पहला सम्पर्क लाला श्यामलाल सत्याग्रही से हुआ जो इन्हें कांग्रेस में लाये। जहाँ तक पंडित नेकीराम शर्मा से उनके सम्बन्धों का प्रश्न है, हरदेव सहाय स्वयं इन शब्दों में उनके गुरुत्व का आभार स्वीकार करते हैं, "मैं पंडित जी को अपना राजनीतिक गुरु मानता हूँ।"[13] स्वामी श्रद्धानन्द के साथ जेल प्रवास ने उनके हिन्दी प्रेम व गोरक्षा भाव को बढ़ाया। ऐसा भी जान पड़ता है कि युवक हरदेव सहाय की विचारधारा पर लाला लाजपतराय का भी असर पड़ा। यह एक संयोग ही है कि ये सभी महानुभाव, जिनके सम्पर्क में हरदेव सहाय अपने प्रारम्भिक जीवन में आए, अपनी हिन्दू-समर्थक विचारधारा के लिए विख्यात थे।

यह सच है कि हरदेव सहाय पर उपरलिखित तमाम बातों का असर पड़ा, किन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनकी जीवन शैली पर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के व्यक्तित्व की भी छाप पड़ी। जैसे-जैसे दिन बीतते गए, हरदेव सहाय ने गांधीजी के आदर्शों का पालन करना शुरू कर दिया और ये आदर्श थे—सच्चाई, सादगी व स्वदेशी।

सन्दर्भ

1. लाला हरदेव सहाय के छोटे भाई फूलचन्द से लेखक का हिसार में 19 सितम्बर 1993 को साक्षात्कार.
2. वही.
3. लालाजी के भतीजे मुन्शीराम मित्तल के संस्मरण.
4. वही.

5. वही.
6. *गोधन* (लालाजी द्वारा स्थापित व सम्पादित पत्रिका, देहली से प्रकाशित) जनवरी 1963.
7. लालाजी के भतीजे सुरेश मित्तल के संस्मरण.
8. वही.
9. मास्टर पंजाब सिंह, सातरोद निवासी, का अप्रकाशित लेख.
10. वही.
11. *गोधन*, 30 दिसम्बर 1957.
12. केशवदेव बावरी (लालाजी के साथी) के कागजात.
13. *पं० नेकीराम शर्मा अभिनन्दन ग्रंथ* (कलकत्ता, 1953), पृ० 128.

हरियाणा में ग्रामीण-शिक्षा के जनक

अंग्रेजों के शासन-काल में हिसार जिला शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़ा हुआ था। सन् 1881 की जनगणना के अनुसार इस जिले की साक्षरता की दर मात्र दो प्रतिशत थी। पचास वर्ष के बाद भी अर्थात् 1931 में यह प्रतिशत 3.25 से आगे नहीं बढ़ पाई। सन् 1931 की ही जनगणना के अनुसार देश की साक्षरता की औसत 8% थी और पंजाब, जिसमें हरियाणा भी शामिल था, की साक्षरता की औसत 11% थी।[1] इसका अर्थ यह हुआ कि हिसार में साक्षरता के विकास की गति दूसरी जगहों की तुलना में बहुत धीमी थी। पचास वर्षों की लम्बी अवधि में भी यहाँ साक्षरता के प्रतिशत में केवल 1.25 की वृद्धि हुई थी।[2] शिक्षाप्रेमी लाला हरदेव सहाय ने हिसाब लगाकर देखा कि यदि साक्षरता के विकास की यही रफ्तार रही तो हिसार जिला हजार सालों में भी शत-प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य नहीं प्राप्त कर सकता। वह यह भी जानते थे कि ब्रिटिश सरकार शिक्षा के प्रति उदासीन है। अतः लाला हरदेव सहाय ने अपने पिता लाला मुसद्दीलाल, चाचा लाला हरस्वरूप व लाला हरीराम और गाँव के ही एक सेवाभावी पंडित भगतराम की सहायता से 12 जुलाई 1912 को अपने पैतृक गाँव सातरोद में एक प्राइमरी स्कूल खोला। चूँकि इस स्कूल में शिक्षा का माध्यम हिन्दी था, विद्यार्थियों की संख्या हर साल बढ़ती गई।

सन् 1923 का, हिसार जिले के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस साल नवम्बर में लाला हरदेव सहाय ने पंडित ठाकुरदास भार्गव और पंडित नेकीराम शर्मा की सहायता से 'विद्या प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। पंडित नेकीराम शर्मा इस सभा के अध्यक्ष थे, ठाकुरदास भार्गव जनरल सेक्रेटरी तथा लालाजी इस सभा के मैनेजर थे। इस 'सभा' का उद्देश्य हिसार जिला के ग्रामीण क्षेत्रों में हिन्दी-माध्यम से शिक्षा का

प्रचार-प्रसार करना था।

विद्या प्रचारिणी सभा ने सबसे पहले सातरोद गाँव के स्कूल का संचालन अपने हाथों में लिया। इसे एक मॉडल स्कूल का रूप दिया गया। आरम्भ में यह एक प्राइमरी स्कूल था। सन् 1928 में इसे मिडिल स्कूल के रूप में अपग्रेड कर दिया गया और 1929 में इसके साथ एक शिल्पशाला भी जोड़ दी गई। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय (1865-1928) की स्मृति में इस वर्कशाप का नाम 'लाजपतराय शिल्पशाला' रखा गया। लाला हरदेव सहाय 37 वर्ष के लम्बे अरसे तक इस स्कूल की देख-भाल करते रहे और उसके बाद राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 80वें जन्म दिवस के शुभ अवसर पर—2 अक्तूबर 1949—इसका प्रबन्ध पंजाब सरकार को सौंप दिया गया।[3]

लालाजी के कुशल संचालन में सातरोद स्कूल का प्रान्त भर में बड़ा नाम हुआ। लालाजी ने इस स्कूल में अनेक प्रयोग किये। फलस्वरूप यह स्कूल एक असाधारण संस्था बन गई। यहाँ पर तीसरी कक्षा से दूसरे विषयों के अतिरिक्त *'गीता'* और *'रामायण'* का अध्ययन अनिवार्य था। प्रत्येक शनिवार को एक प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता था जिसमें *'गीता'* के श्लोक और *'रामायण'* की चौपाइयों का पाठ होता था।

प्रातःकालीन प्रार्थना, स्कूल के दैनिक कार्यक्रम का एक नियमित अंग थी। लालाजी प्रायः इस प्रार्थना में शामिल होते और विद्यार्थियों को सम्बोधित करते थे। अक्सर वह नैतिकता या देशभक्ति जैसे विषयों पर बोलते थे। कभी-कभी बाहर से विद्वान् वक्ताओं को भी बोलने के लिए आमन्त्रित किया जाता था। उदाहरणार्थ, रघुनाथ प्रियदर्शी, जो उन दिनों इस स्कूल के छात्र थे, सन् 1993 में लिखे अपने संस्मरण में हमें बताते हैं :

> मुझे अभी भी याद है कि सन् 1946 में प्रसिद्ध समाज-सेवी स्वामी केशवानन्द जी हमारे स्कूल की प्रातःकालीन प्रार्थना को सम्बोधित करने के लिए आये थे। पहले लालाजी ने उनका परिचय कराया, फिर स्वामीजी ने विद्यार्थी-जीवन पर अपना भाषण दिया। उनका भाषण संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली था।[4]

इस स्कूल की कुछ और भी विशेषतायें थीं, जैसे :

- सभी विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के लिए धूम्रपान वर्जित था।
- यदि कोई विद्यार्थी गाली देते या झूठ बोलते हुए पाया जाता, तो उसे उचित सजा दी जाती थी।
- सभी विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए खद्दर पहनना अनिवार्य था।
- विद्यार्थियों के लिए शारीरिक व्यायाम अनिवार्य था।

यद्यपि लालाजी प्रशासनिक एवं अन्य कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहते थे, फिर भी वह कई बार स्कूल में भिन्न-भिन्न विषय पढ़ाया करते थे। हमें इस तथ्य से अवगत कराते हुए शिकारपुर के मास्टर पतराम, जो उस समय सातरोद स्कूल के छात्र थे, बताते हैं, "सन् 1926-28 में जब मैं माध्यमिक कक्षाओं का छात्र था, लालाजी हमें हिन्दी और इतिहास विषयों को पढ़ाने के अतिरिक्त, धर्म और देशभक्ति की भी शिक्षा देते थे।"[5]

चूँकि इस स्कूल का नाम दूर-दूर तक फैला हुआ था, बहुत से विशिष्ट व्यक्ति स्कूल के वार्षिकोत्सव या दूसरे अवसरों पर यहाँ आते रहते थे। लालाजी सरल जीवन और उच्च आदर्श वाले व्यक्ति थे, इसलिए वह दिखावे में विश्वास नहीं रखते थे। अतः किसी विशिष्ट अतिथि के आगमन पर स्कूल का वार्षिक विवरण नहीं पढ़ा जाता था। लालाजी की राय थी, "यदि स्कूल में कोई गुण है तो विशिष्ट मेहमान स्वयं उसका अनुभव कर लेगा।"

यद्यपि यह स्कूल एक सुदूर देहाती क्षेत्र में था, फिर भी यहाँ उन दिनों के शहरी स्कूलों से अधिक सुविधायें थीं। सम्भवतः यह उन दिनों का एकमात्र माध्यमिक विद्यालय था जिसमें पुस्तकालय, गोशाला, शिल्पशाला, खादी-भण्डार, औषधालय, छात्रावास और खेल का विशाल मैदान था।[6]

वर्षा की कमी और सिंचाई के साधनों के अभाव के कारण, हिसार जिले में प्रायः अकाल पड़ते थे। जिसके परिणामस्वरूप यहाँ की ग्रामीण जनता गरीबी और भुखमरी से पीड़ित थी और वह अपने बच्चों को स्कूल भेजने की स्थिति में नहीं थी। इसलिए लालाजी ने शिल्पशाला खोलकर

इसका एक विकल्प निकाला। इसकी स्थापना अगस्त सन् 1929 में सातरोद गाँव में हुई और इसका नाम रखा गया 'लाजपतराय शिल्पशाला'। लालाजी का विचार था, "यदि कोई गरीब विद्यार्थी इस शिल्पशाला में दाखिला लेता है तो वह पढ़ने के साथ-साथ अपनी रोजी भी कमा सकता है।" इस शिल्पशाला को खोलते समय उनके दिमाग में जर्मनी और जापान के स्कूलों का उदाहरण भी था।

इस शिल्पशाला में प्रशिक्षण पाने वाले विद्यार्थियों को कताई, बुनाई और रंगाई जैसे हुनर सिखाये जाते थे। यहाँ कम्बल, खेस, लोई, गलीचा, दरी, तौलिया, जुराब, आसन और निवार बुनना सिखाया जाता था। इसके अतिरिक्त, सूती कपड़े सिलना और ऊनी स्वेटर बुनना भी सिखाया जाता था। इन सब कामों में केवल हाथ का काता हुआ सूती और ऊनी धागा इस्तेमाल होता था।

शिल्पशाला का बना हुआ माल, न केवल काफी मात्रा में ही होता था, बल्कि गुणवत्ता में भी श्रेष्ठ था। यहाँ के बने हुए गलीचे और आसन हरिपुरा (गुजरात) में भी प्रदर्शित किए गए थे, जहाँ जनवरी 1938 में इंडियन नेशनल कांग्रेस का 54वां वार्षिक अधिवेशन हुआ था। वहां इन वस्तुओं की बहुत सराहना हुई थी।[7]

सातरोद गाँव की इस शिल्पशाला द्वारा तैयार की गई वस्तुएँ, न केवल सातरोद स्कूल के खद्दर-भण्डार बल्कि हिसार और दूसरे शहरों में भी बेंची जाती थीं। प्रशिक्षण पाने वाले विद्यार्थियों के श्रम का बाकायदा भुगतान किया जाता था। एक अनुमान के अनुसार, शिल्पशाला का प्रत्येक विद्यार्थी महीने में 15 रुपये तक कमा लेता था। इसके अतिरिक्त जो लाभ होता था, उसे स्कूल के रख-रखाव पर खर्च किया जाता था। सन् 1935-36 के सत्र में, शिल्पशाला में प्रशिक्षण पाने वाले 18 विद्यार्थी थे जिनकी बनाई हुई वस्तुओं से 589 रुपये का लाभ हुआ। साथ ही पढ़ाई में भी विद्यार्थियों का परिणाम बहुत अच्छा रहा। ये सभी विद्यार्थी माध्यमिक परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुए।[8]

लालाजी के नेतृत्व में किया गया शिल्पशाला का यह प्रयोग इतना लाभकारी और सफल रहा कि हिसार डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने भी इसकी

देखा-देखी हिसार और सिरसा के दो हाई स्कूलों में शिल्प की कक्षायें आरम्भ कर दीं। यहाँ पर यह कहना भी अतिश्योक्ति न होगा कि 'लाजपतराय शिल्पशाला' की शानदार सफलता से सातरोद स्कूल को राष्ट्रीय स्तर तक की ख्याति मिली। सम्भवतः यह भारतवर्ष का एकमात्र ग्रामीण माध्यमिक विद्यालय था जहाँ देश के अनेक सुप्रसिद्ध व्यक्तित्व पधारे और स्कूल की सराहना की। इस विद्यालय में समय-समय पर पधारने वाले महानुभावों में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, पंडित जवाहरलाल नेहरू, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, जी० वी० मावलंकार, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, चौधरी छोटूराम और पंजाब के गवर्नर सर हर्बर्ट एमर्सन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं (संस्था में पधारने वाले सज्जनों एवं उनकी सम्मतियों हेतु, परिशिष्ट संख्या-1 देखें)। यहाँ केवल नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के मुआयने का संक्षिप्त उल्लेख करना पर्याप्त होगा। 29 नवम्बर 1938 को कांग्रेस अध्यक्ष, जिसको उन दिनों 'राष्ट्रपति' कहते थे, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के स्कूल आगमन पर लाला हरदेव सहाय स्वयं लिखते हैं :

> राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र बोस दोपहर बाद एक बजे लाजपतराय शिल्पशाला पहुँचे। शिल्पशाला की हस्तकला की वस्तुओं का मुआयना करते समय उन्होंने उसमें गहरी दिलचस्पी दिखाई। छात्रों द्वारा किए गए व्यायाम प्रदर्शन का भी उन्होंने आनन्द उठाया। ग्रामीण छात्रों द्वारा बनाए हुए बहुत ही सुन्दर ढंग से भारत, पंजाब और हिसार के नक्शों को भी उन्होंने बहुत सराहा।[9]

जब सुभाषचन्द्र बोस सातरोद स्कूल में आए थे, तो उस समय स्कूल में 125 विद्यार्थी थे। उनमें से 51 माध्यमिक कक्षाओं में थे, 64 प्राइमरी कक्षाओं में और शिल्पशाला में 10 विद्यार्थी प्रशिक्षण पा रहे थे।[10] शिल्पशाला में बनी हुई कुछ सुन्दर खादी, सुभाषचन्द्र बोस को भेंट स्वरूप दी गई थीं।[11]

सातरोद स्कूल को एक आदर्श स्कूल बनाने के बाद, लाला हरदेव सहाय ने विद्या प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में हिसार जिले के 65 गाँवों में स्कूल खोले (इन स्कूलों की सूची, परिशिष्ट नं. 2 में देखें)। चाहरवाला

गाँव के स्कूल को छोड़कर, जो बाद में माध्यमिक विद्यालय बन गया था, बाकी सभी 64 स्कूल प्राइमरी स्कूल थे। सन् 1931 में चाहरवाला स्कूल के साथ एक शिल्पशाला भी जोड़ दी गई।[12]

विद्या प्रचारिणी सभा की स्थापना के पहले वर्ष (1923-24) में ही इसके द्वारा चलाए गए स्कूलों में 737 विद्यार्थियों ने प्रवेश लिया। दूसरे वर्ष (1924-25) में यह संख्या बढ़कर 1,153 हो गई।[13] सन् 1939 तक सभा के स्कूलों से 4,000 से अधिक विद्यार्थी प्राइमरी और मिडिल स्कूल की परीक्षायें पास कर चुके थे और इनमें से 350 विद्यार्थियों को रोजगार भी मिल गया था।[14]

विद्या प्रचारिणी सभा के द्वारा संचालित स्कूलों के लिए, सातरोद का स्कूल निःसन्देह एक आदर्श स्कूल था। अतः सभा के सभी स्कूलों में सातरोद स्कूल के ही पाठ्यक्रम, विषय और नियम लागू होते थे। फलतः ये सभी स्कूल हिन्दी भाषा के विकास, नैतिक शिक्षा और राष्ट्रीय चेतना के केन्द्र बन गए। सातरोद स्कूल की ही भाँति इन स्कूलों में भी पुस्तकालय और निःशुल्क औषधालय खोले गए।

गरीबों और कमजोर वर्गों के हिमायती होने के कारण, लालाजी ने गरीब लड़कों, हरिजनों और लड़कियों में शिक्षा को लोकप्रिय बनानें के लिए विशेष प्रयास किया। सभा के स्कूलों में ऐसे विद्यार्थियों को मुफ्त किताबें और दूसरी सुविधायें दी जाती थीं। सन् 1923-24 के पहले सत्र में कुल दो हरिजन विद्यार्थियों ने दाखिला लिया था और अगले साल यह संख्या बढ़ कर 65 हो गई। एक हिसाब के अनुसार इन 65 हरिजन छात्रों पर सभा ने 166/- रुपये खर्च किये।[15] ऐसे विद्यार्थियों की संख्या और उन पर किया गया खर्च प्रतिवर्ष बढ़ता गया।

लालाजी केवल लड़के-लड़कियों में शिक्षा प्रसार से संतुष्ट नहीं थे। वह अपने क्षेत्र के ग्रामीण प्रौढ़ व्यक्तियों को भी शिक्षा देना चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्या प्रचारिणी सभा ने लालाजी के दिशा-निर्देश में सातरोद के अतिरिक्त भगाणा, खानपुर, दैय्यड़, स्याहड़वा आदि गाँवों में सन् 1924-25 में रात्रि-स्कूल खोले।[16]

लालाजी यह बात भली-भाँति जानते थे कि एक अच्छा अध्यापक

स्कूल के लिए वरदान होता है। चूँकि सातरोद स्कूल में विद्या प्रचारिणी सभा का मुख्य कार्यालय था इसलिए यह स्कूल प्रायः सेमिनार का आयोजन करता था जहाँ सभा के अन्य स्कूलों के अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाता था। उदाहरणार्थ, मास्टर बिहारी लाल ने सातरोद में 21 से 30 सितम्बर 1939 तक एक सेमिनार का आयोजन किया जिसमें विद्या प्रचारिणी सभा के विभिन्न विद्यालयों के 23 अध्यापकों ने भाग लिया।[17] इस सेमिनार में अध्यापकों को हिन्दी भाषा, अस्पृश्यता आन्दोलन, प्रौढ़-शिक्षा, स्वदेशी, ग्रामीण विकास और राष्ट्रीयता के महत्त्व से अवगत कराया गया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि लालाजी इन गोष्ठियों के प्रेरणा-स्रोत होते थे और वे भी अपने प्रेरक भाषणों से अध्यापकों को सम्बोधित करते थे।

विद्या प्रचारिणी सभा के स्कूलों में अध्यापकों की नियुक्ति के समय सातरोद स्कूल के पुराने विद्यार्थियों को प्राथमिकता दी जाती थी। उदाहरण के लिए, शिकारपुर के मास्टर पतराम, जिन्होंने सातरोद स्कूल से मिडिल परीक्षा पास की, बताते हैं :

> जब मैंने सन् 1931 में मैट्रिक की परीक्षा पास की तो लाला हरदेव सहाय जी ने तुरन्त मुझे चाहरवाला स्कूल में अध्यापन कार्य के लिए आमंत्रित किया। वहाँ मैंने 16 वर्ष सेवा की और 1 अप्रैल 1947 को, जब स्कूल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को सौंप दिया गया, मैं हैडमास्टर के पद से सेवा मुक्त हुआ।[18]

जिस प्रकार सातरोद स्कूल, सभा के सभी स्कूलों के लिए एक आदर्श था, उसी प्रकार लालाजी का प्रेरणादायक व्यक्तित्व सभी स्कूलों के छात्रों एवं अध्यापकों के लिए एक आदर्श था। लगभग सभी अध्यापक और छात्र अपने स्कूलों के प्रति पूरी तरह समर्पित थे। उनके इस समर्पण-भाव का उल्लेख विद्या प्रचारिणी सभा की एक रिपोर्ट में इस प्रकार है—"सन् 1924-25 में चाहरवाला और खानपुर गाँवों के स्कूल भवनों का निर्माण कार्य अवकाश के दिनों में अध्यापकों और विद्यार्थियों के द्वारा किया गया।"[19] सरकारी स्कूलों की तुलना में सभा के स्कूल अपने अध्यापकों को कम वेतन दे पाते थे। ऐसे भी अवसर आये जब अध्यापकों ने महीनों अवैतनिक सेवा की। एक उदाहरण देते हुए, लालाजी 15

अगस्त 1937 को लिखते हैं : "चौधरी कांशीराम, निवासी बूरा गाँव (तहसील हिसार), ने सातरोद की शिल्पशाला में बिना किसी वेतन के एक वर्ष तक बड़ी लगन से सेवा की।"[20] यदि हम इस सभा के स्कूलों के वार्षिक बजट की तुलना सरकारी स्कूलों से करें तो हम इसे बहुत किफायती पायेंगे। जहाँ तक इनके तुलनात्मक योगदान का प्रश्न है, सरकारी स्कूल बराबरी में कहीं नहीं ठहरते।

लालाजी के प्रेरणादायक मार्गदर्शन में विद्या प्रचारिणी सभा ने लगभग एक चौथाई शताब्दी तक इन स्कूलों का सफल संचालन किया। एक अप्रैल 1947 को ये स्कूल पंजाब सरकार को सौंप दिए गए। सातरोद स्कूल 1949 में सरकार के सुपुर्द किया गया। सभा के स्कूलों के इतिहास पर कुछ प्रकाश डालते हुए, लालाजी सन् 1956 में लिखते हैं :

> स्वामी श्रद्धानन्द जी ने मियांवाली जेल में मुझसे कहा कि जेल से छूटकर हिन्दी प्रचार पर ध्यान दो। स्वामीजी की आज्ञानुसार 1923 में पं० ठाकुरदास जी के सहयोग से विद्या प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। जिन गाँवों में शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी वहाँ प्राइमरी पाठशालायें तथा सातरोद में माध्यमिक विद्यालय जारी किया। लगभग पच्चीस हजार लोगों ने हिन्दी पढ़ी। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने भी हिन्दी को स्थान दिया। सभा ने 1923 से 1949 तक चार लाख रुपया खर्च किया, जिसमें से पचास हजार रुपया पं० ठाकुरदास जी भार्गव ने दिया।[21]

यहाँ पर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि, बाकी के 3.5 लाख रुपये की रकम का कहाँ से इन्तजाम किया गया? लाला हरदेव सहाय एक प्रतिष्ठा सम्पन्न व्यक्ति थे और उनका बहुत से लोगों पर गहरा प्रभाव था। लालाजी दानशील व्यक्तियों, अपने पुराने विद्यार्थियों, सरकारी अफसरों और सामाजिक संस्थाओं से दान की अपील करते थे और उनकी अपील का उचित सम्मान किया जाता था। विद्या प्रचारिणी सभा को पंजाब सरकार, हिसार डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और हलवासिया ट्रस्ट से भी आर्थिक सहायता मिलती थी। साथ ही लालाजी को अनेक मित्रों, प्रशंसकों और भक्तों से भी चन्दा मिल ज़ाता था। इसी प्रकार की एक आर्थिक सहायता

का जिक्र करते हुए, लालाजी 15 अगस्त 1937 को लिखते हैं :

> डिस्ट्रिक्ट बोर्ड (हिसार) और महकमा दस्तकारी ने क्रमशः 1,600/- रुपये और 1,961/- रुपये की आर्थिक सहायता दी है। इनके अतिरिक्त पं० ठाकुरदास भार्गव, डॉ० गोपीचन्द भार्गव, हिसार के लाला छबीलदास, भिवानी के लाला रामचन्द्र वैद्य, दिल्ली के सेठ श्रीराम और कलकत्ता के सेठ सूरजमल जैसे दानियों ने सैकड़ों रुपये की आर्थिक सहायता दी है जिससे शिल्पशाला के लिए साज-सामान खरीदा जा सके और सुपात्र विद्यार्थियों को वजीफा दिया जा सके।[22]

सभा के स्कूलों को चलाने में आर्थिक सहायता से भी अधिक लालाजी की सेवाभाव का योगदान था। जिस समय हिसार जिले के गाँवों में शिक्षा का नितान्त अभाव था, ऐसे समय में लालाजी ने ग्रामीण शिक्षा का बीड़ा उठाया। लालाजी ने जिले के दूर-दराज के रेगिस्तानी गाँवों का तूफानी दौरा किया और गाँव वालों से अपने बच्चों को सभा के स्कूलों में भरती कराने का आग्रह किया। इन इलाकों का भ्रमण करते समय लालाजी को कई बार मीलों पैदल चलना पड़ता था। कभी-कभार वह बैलगाड़ी, ऊँट या घोड़ी पर भ्रमण करते थे। उन तूफानी दौरों के दिनों में लालाजी नियमित भोजन भी नहीं कर सकते थे, इसलिए हमेशा थैले में भुने हुए चने और गुड़ लेकर चलते थे।

यह अध्याय अधूरा रह जाएगा यदि हम हिन्दी प्रचार-प्रसार हेतु लालाजी के योगदान की यहाँ चर्चा नहीं करते। सभा के स्कूलों में हिन्दी अनिवार्य विषय था। यहाँ यह बताना जरूरी है कि उन दिनों उर्दू का चलन अधिक था। सभा के द्वारा किए गए हिन्दी के प्रयोग की सफलता से प्रेरित होकर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के स्कूलों ने भी हिन्दी को अपनाया। यदि शिक्षा विभाग का कोई अधिकारी हिन्दी भाषा की पढ़ाई में कभी टाँग अड़ाता, तो लालाजी तुरन्त इसकी सूचना उच्च अधिकारियों को देते थे। लालाजी ने विद्या प्रचारिणी सभा के स्कूल, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को तभी सौंपे जब बोर्ड ने अपने स्कूलों में हिन्दी को अनिवार्य भाषा के रूप में अपना लिया था। उनका हिन्दी प्रेम इतना था कि उन्होंने सातरोद स्कूल में रत्न, भूषण और प्रभाकर कक्षाओं की भी व्यवस्था की थी।[23] वह कुछ गिने-चुने

भारतवासियों में से एक थे जिन्होंने अपने जीवन के चालीस वर्ष से भी अधिक का समय हिन्दी की सेवा में लगाया। उन्होंने लगभग 30 पुस्तकें हिन्दी में लिखीं और हिन्दी में ही चार पत्रिकायें प्रकाशित कीं (विवरण के लिए कृपया ग्रन्थ सूची देखें)। जब स्वतन्त्र भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं मिला, तो उन्हें बड़ा धक्का लगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने जीवन पर्यन्त प्रयास भी किया।

लाला हरदेव सहाय ने निःसन्देह अपने पिछड़े इलाके में शिक्षा के प्रसार के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया था। लालाजी की यह दृढ़ धारणा थी कि 'शिक्षा' और 'गुलामी' एक साथ नहीं रह सकते। या यों कहें कि शिक्षा आजादी की कुंजी है। उनका यह भी विश्वास था कि यदि विद्यार्थियों को ठीक ढंग से शिक्षा दी जाए तो न केवल राष्ट्र, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त होगा, बल्कि गरीबी व भुखमरी से भी छुटकारा पा सकेगा। इसलिए सबसे पहले उन्होंने अपने क्षेत्र में विद्या प्रचारिणी सभा के माध्यम से पूरे संकल्प के साथ शिक्षा में नये-नये प्रयोग किए जो काफी हद तक सफल भी रहे।

जिस किसी ने भी सभा के स्कूलों में शिक्षा प्राप्त की, उसमें सरलता, सादगी, पठनशीलता, ईमानदारी के गुण विकसित हुए, उसमें मेहनत करने की आदत पड़ी और वह अपने देश की प्राचीन संस्कृति का प्रशंसक बना। अंग्रेजी सरकार इन स्कूलों को शक की निगाह से देखती थी। जब गांधीजी ने सन् 1930 में 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन', 1940 में 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' और 1942 में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का बिगुल बजाया, तब इन स्कूलों के अध्यापकों और विद्यार्थियों ने भी इनमें सक्रिय भाग लिया। विद्या प्रचारिणी सभा के स्कूलों, विशेषकर सातरोद स्कूल, पर अक्सर पुलिस के छापे पड़ते थे। स्कूलों का सामान जब्त कर लिया जाता था, फाटक पर ताला लगा दिया जाता था और अध्यापकों तथा पुराने विद्यार्थियों को गिरफ्तार कर लिया जाता था।[24] देश की एक लोकप्रिय साप्ताहिक पत्रिका ने इस बात को स्वीकारा है कि, सातरोद स्कूल आजादी की लड़ाई का एक केन्द्र था।[25]

सभा के स्कूलों की बदौलत हजारों ग्रामीण युवक शिक्षा पा सके

और उनमें बहुतों को नौकरियाँ मिल गईं या वे अपने काम में लग गए। बहुत से युवकों ने कई प्रकार से अपने राष्ट्र की सेवा की। लालाजी द्वारा स्थापित विद्या प्रचारिणी सभा, भारतवर्ष में अपनी किस्म की एक अनूठी संस्था थी। इस संस्था को अनेक प्रतिभाशाली छात्रों को पैदा करने का गौरव प्राप्त हुआ। इनमें से एक प्रमुख हैं—महान् शिक्षाविद् डॉ० रामगोपाल जो दिल्ली यूनिवर्सिटी से संस्कृत में पी-एच० डी० करने वाले पहले विद्वान् थे और बाद में महर्षि दयानन्द यूनिवर्सिटी, रोहतक के कुलपति बने। इसी संस्था के स्कूल में भगत रामेश्वरदास (लाडवा), पं० सन्तलाल (लाडवा), चौधरी रामस्वरूप कागदाना और पंडित स्वरूपसिंह (गोरखपुर) जैसे लोकप्रिय स्वतन्त्रता सेनानियों ने शिक्षा पाई। इसी स्कूल ने पं० हरदत्त राय शर्मा, पतराम शिकारपुर और चौ० कांशीराम बूरा जैसे समर्पित तथा रघुनाथ प्रियदर्शी व पं० सीताराम जैसे राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता अध्यापक पैदा किये। इन्हीं स्कूलों से दैनिक हिन्दी पत्र *'हिन्दुस्तान'* के केदारनाथ और *'नवभारत टाइम्स'* के श्रीदत्त जैसे पत्रकार शिक्षा पाकर निकले। और इन्हीं स्कूलों ने चौ० बृजलाल बिश्नोई, जो हरियाणा के अतिरिक्त एडवोकेट जनरल बने, जैसे प्रसिद्ध वकील पैदा किये।[26] इसके अतिरिक्त, यहाँ से पढ़कर कुछ विद्यार्थी आगे चलकर देश के प्रसिद्ध उद्योगपति भी बने जिनमें से प्रमुख हैं, सेठ वासुदेव अग्रवाल एवं रामप्रताप गुप्ता।[27] लालाजी के प्रयास और प्रोत्साहन से सिसाय के चौ० लाजपतराय की सुपुत्री भाना देवी ने बी. ए. की परीक्षा सन् 1937 में पास की जब गाँव की लड़कियों में शिक्षा प्रायः नहीं के बराबर थी।[28] वह हरियाणा की प्रथम ग्रामीण लड़की थी जिसको स्नातक बनने का श्रेय मिला। लेखक स्वयं सभा के स्कूलों के अनेक पुराने विद्यार्थियों से मिला है। लालाजी का हृदय से आभार व्यक्त करते हुए वे कहते हैं : "अगर लालाजी ने हमारे गाँव में विद्या प्रचारिणी सभा का स्कूल न खोला होता, तो आज हमारा जीवन नर्क होता।"

सन्दर्भ

1. *Census of India*, 1931, XVII, Punjab, Part I, Report (Lahore, 1933), p. 261.

2. *ग्राम-सेवक* (लालाजी द्वारा हिसार से प्रकाशित पत्रिका), 15 अगस्त 1939.
3. मास्टर पतराम शिकारपुर (चाहरवाला स्कूल के रिटायर्ड प्रधानाचार्य) से लेखक का साक्षात्कार, हिसार, 28 नवम्बर 1993.
4. रघुनाथ प्रियदर्शी (सातरोद स्कूल के पुराने विद्यार्थी) के संस्मरण, 24 जून 1993.
5. मा० पतराम के संस्मरण, 10 अक्तूबर 1993.
6. प्रियदर्शी के संस्मरण.
7. *ग्राम-सेवक,* 31 जनवरी 1938.
8. वही, 25 मई 1936.
9. वही, 15 दिसम्बर 1938.
10. वही.
11. *The Tribune,* 1 December 1938.
12. मा० पतराम से साक्षात्कार.
13. विद्या-प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट (हिसार, 1925), पृ० 2.
14. *ग्राम-सेवक,* 15 जनवरी 1940.
15. विद्या-प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट, 1925 पृ० 3.
16. वही.
17. *ग्राम-सेवक,* 15 अक्तूबर 1939.
18. मा० पतराम के संस्मरण.
19. विद्या-प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट, 1925, पृ० 7.
20. *ग्राम-सेवक,* 15 अगस्त 1937.
21. गोधन, 25 दिसम्बर 1956.
22. *ग्राम-सेवक,* 15 अगस्त 1937.
23. प्रियदर्शी के संस्मरण.
24. *गोधन,* जनवरी 1963.
25. *The Organiser,* 8 October 1962.
26. लालाजी से परिचित व्यक्तियों से लेखक का पत्र-व्यवहार एवं साक्षात्कार.
27. लेखक का वासुदेव अग्रवाल से दिल्ली में 13 अप्रैल 2011 को साक्षात्कार.
28. *ग्राम-सेवक,* 30 जून 1937.

अकाल पीड़ितों की सहायता

'हरियाणा' शब्द का अर्थ हरी-भरी धरती भी है। किन्तु सन् 1954 में पूरी हुई भाखड़ा बाँध योजना से पूर्व, यहाँ अक्सर अकाल पड़ा करते थे। जहाँ तक हरियाणा प्रांत के जिला हिसार का सम्बन्ध था, यह सबसे अधिक अकाल ग्रस्त था। इस क्षेत्र के अधिकतर भाग को 'बागड़' कहा जाता था जिसका अर्थ है–'वर्षा और जल रहित क्षेत्र'।

सन् 1954 की एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार हिसार जिले (जिसमें आज का भिवानी, सिरसा व फतेहाबाद जिला भी शामिल था) की सिंचाई वाली धरती मात्र 11.1% थी।[1] अतः खेती-बाड़ी के लिये, जो यहाँ का मुख्य व्यवसाय था, उसके लिए किसान को वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता था। सन् 1881 से 1954 तक के 73 वर्ष के आंकड़ों के अनुसार, यहाँ साल में औसत 13 इंच वर्षा होती थी।[2] यहाँ अक्सर आँधियाँ आया करती थीं, यहाँ की धरती रेतीली थी और आँधी में रेत के टिब्बे खिसकते रहते थे। इस क्षेत्र में वनस्पतियाँ नाम मात्र की थीं, कुएँ गहरे थे और उनका पानी खारा था।

आबकारी कमीशन 1901-03 की आम रिपोर्ट के पैरा 15 में यह बताया गया है कि दक्षिण-पूर्व पंजाब (वर्तमान हरियाणा) में 50 सालों में 13 साल भयंकर सुखा पड़ा।[3] बाद के सालों में हालात बद से बदतर होते गये। उस समय की एक पाक्षिक पत्रिका ने हरियाणा नाम पर अपनी प्रतिक्रिया इन व्यंगात्मक पंक्तियों में व्यक्त की है :

न तिनका घास हरा मिलता,
पर नाम पड़ा है हरियाणा,
नंगे भूखे देखने हों तो,
देख लो जा के हरियाणा।[4]

हिसार जिले में सन् 1938-40 का अकाल बीसवीं सदी का सबसे

भीषण अकाल था। अकाल से पहले जिले की आबादी लगभग 10 लाख थी और पशुओं की संख्या सात लाख थी।[5] इनमें से लगभग 30 हजार मनुष्यों को अकाल निगल गया और पाँच लाख पशु भूख से मर गये।[6] इस अकाल की गंभीरता का उदाहरण देते हुए उस समय के हिसार के प्रसिद्ध चिकित्सक एवं समाजसेवी डाक्टर रामजी लाल हुड्डा 22 दिसम्बर 1938 को अपनी डायरी में लिखते हैं : "पशुओं के लिये चारा नहीं है, यहाँ तक कि हमारे लिये भी गेहूँ नहीं है।"[7]

अकाल के समय हिसार जिला पंजाब प्रांत के अम्बाल डिवीजन का एक हिस्सा था। उस समय पंजाब के मुख्य मंत्री जमींदारा लीग के सर सिकन्दर हयात खाँ थे। रोहतक जिले के चौधरी छोटूराम उनके मंत्रिमण्डल के प्रभावशाली सदस्य थे। जहाँ तक ब्रिटिश सरकार का सम्बन्ध है, वह अकाल की समस्या का दो कारणों से स्थायी हल नहीं करना चाहती थी। पहला कारण, ब्रिटिश सरकार सन् 1857 के विद्रोह में हरियाणावासियों के अंग्रेज-विरोधी कारनामों को भूली नहीं थी। दूसरा कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार इस क्षेत्र को फौज की भरती का केन्द्र बनायें रखना चाहती थी।

इन परिस्थितियों में लाला हरदेव सहाय—पण्डित नेकीराम शर्मा व बाबू ठाकुरदास भार्गव जैसे देशप्रेमियों के साथ मिलकर—अकाल पीड़ितों की सहायता में जी-जान से जुट गये। इस पुनीत कार्य को सुसंगठित ढंग से चलाने के लिये इन तीनों ने 27 सितम्बर 1938 को 'कांग्रेस कहत कमेटी' बनाई। लालाजी को इस कमेटी का जनरल सेक्रेटरी नियुक्त किया गया। पंडित नेकीराम शर्मा इसके प्रधान बने। बाबू ठाकुरदास भार्गव इस कमेटी के उप-प्रधान भी थे और खजाँची भी। इस कमेटी के दूसरे सदस्य थे—चौधरी साहब राम, मीर मुश्ताक हुसैन, चौधरी उदमी राम और डॉ. मुरली मनोहर।[8]

अकाल-पीड़ितों को शीघ्र राहत पहुँचाने के लिये लालाजी ने स्वयं द्वारा प्रकाशित पाक्षिक पत्रिका *'ग्राम सेवक'* का भी सहारा लिया। लालाजी अकाल की गंभीरता को अच्छी तरह समझते थे, इसलिए उन्होंने अपनी पत्रिका के माध्यम से अधिकारियों से अकाल-पीड़ितों की तत्काल

सहायता करने की अपील की। जब-जब सरकार सहायता की मंजूरी देती, लालाजी तुरन्त पीड़ित व्यक्तियों को सूचित करते ताकि वे सहायता का लाभ उठा सकें। लालाजी धनवान व्यक्तियों और कल्याणकारी संस्थाओं से पत्रिका के जरिए सहायता की अपील करते थे। चूँकि अकाल ग्रस्त गरीब जनता *'ग्राम सेवक'* पत्रिका खरीदने की हालत में नहीं थी इसलिये इसकी प्रतियाँ गाँवों में प्रायः निःशुल्क बाँटी जाती, हालांकि पत्रिका पहले ही घाटे में चल रही थी। अपनी पत्रिका के उद्देश्य के बारे में लालाजी मार्च 1940 में लिखते हैं, *'ग्राम-सेवक'* को प्रकाशित करने का एकमात्र उद्देश्य है, गरीब जनता की सेवा।[9]

जनता को बड़े पैमाने पर जागरूक करने के लिये लालाजी ने कांग्रेस की छत्रछाया में जन-सभायें करनी शुरू कर दीं। जिला कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी होने के नाते, उन्होंने इन जनसभाओं को सफल बनाने में बड़ा योगदान दिया।

पहली महत्वपूर्ण जनसभा हिसार में 8 अक्तूबर 1938 को हुई। इसका सभापतित्व शहीद भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह ने किया। लालाजी के अतिरिक्त इस सभा को पंडित नेकीराम शर्मा, सरदार मंगल सिंह, सरदार प्रताप सिंह कैरों, खलीफा फजलुद्दीन, शेख बदरुद्दीन और के० ए० देसाई ने सम्बोधित किया। अकाल-पीड़ितों की तकलीफों पर गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए, लालाजी और दूसरे वक्ताओं ने सरकार से कहा कि वह निम्नलिखित कदम तुरन्त उठाये :

- चारा ढोने के रेल-भाड़े पर पूरी छूट दी जाये।
- कम-से-कम 100 सूत कताई केन्द्र खोले जायें।
- रियायती दरों पर चारे की दुकानें खोली जायें।
- तालाब और कुएँ खुदवाये जायें।[10]

लालाजी ने एक के बाद एक, कई सभायें की। चूँकि अकाल से गाँव के लोग बहुत बुरी तरह से प्रभावित हुए थे, इसलिए लालाजी ने गाँवों में ही सभाएं करने पर अधिक जोर दिया। सन् 1938 के अक्तूबर और नवम्बर महीनों में लालाजी ने अनेक गाँवों का तूफानी दौरा किया और किसानों को आबियाना (सिंचाई कर) अदा करने से मना किया।

तत्कालीन हिसार जिले का शायद ही कोई गाँव बचा होगा जहाँ लालाजी न गये हों। उदहरणार्थ, 6 मई 1939 को लालाजी एक राजनीतिक सम्मेलन को संबोधित करने ऐलनाबाद गये। उस सम्मेलन में हिसार जिला और बीकानेर रियासत के अकाल-पीड़ित गांवों से 2,000 प्रतिनिधि आये थे। सम्मेलन को संबोधित करते हुए, लालाजी ने पंजाब सरकार और बीकानेर रियासत के महाराजा गंगा सिंह से जोरदार शब्दों में निम्न माँगे की :

– पानी का तत्काल प्रबन्ध किया जाये।
– अकाल पीड़ितों में तकावी बाँटी जाये।
– फैले हुए भ्रष्टाचार को तुरन्त रोका जाये।[11]

अकाल के दौरान लालाजी और उनके साथियों ने अनेक सभायें की। इनमें सबसे उल्लेखनीय सभा 19 मई 1939 को हिसार के कटला रामलीला में की गई। हिसार नगर के इतिहास में ऐसी सभा इससे पूर्व कभी नहीं हुई थी। इस सभा की कुछ निम्नलिखत विशेषतायें, यूं थीं :

– इस सभा में जिला हिसार और आस-पास के इलाकों से 15,000 लोग आये थे।
– सभा में आते समय रास्ते में सभी किसान अपने हाथों में कांग्रेस का झंडा लिये हुए नारे लगा रहे थे, "महात्मा गांधी की जय", "भारत माता की जय"।
– बहुत बड़े शामियाना और लाऊड स्पीकर की व्यवस्था विशेष रूप से दिल्ली से की गई थी।[12]

इस सभा की अध्यक्षता प्रसिद्ध राष्ट्रवादी कांग्रेसी नेता डा0 सैफुद्दीन किचलू ने की। लालाजी के अतिरिक्त, इस सम्मेलन में प्रसिद्ध किसान नेता सरदार सोहन सिंह जोश और हरियाणा केसरी पं० नेकीराम शर्मा ने भाषण दिये। सभा को संबोधित करते हुए लालाजी ने पंजाब सरकार के ढुलमुल रवैये की तीखी आलोचना की। लालाजी इस बात को भली-भाँति जानते थे कि बार-बार पड़ने वाले अकाल का एक ही स्थायी समाधान है, और वह है 'भाखड़ा नहर' का निर्माण। **लालाजी ने पंजाब सरकार को कहा, "भाखड़ा नहर लाओ या जाओ"**।[13]

इस सभा में लालाजी और पंडित नेकीराम शर्मा ने पंजाब सरकार को चेतावनी दी कि यदि 29 फरवरी 1940 तक भाखड़ा नहर योजना को कार्यान्वित नहीं किया गया तो अकाल पीड़ित क्षेत्र के लोगों को मजबूर होकर जन-आंदोलन छेड़ना पड़ेगा। जब सरकार ने इस चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया, तो एक जन-आंदोलन छेड़ा भी गया।

इस इलाके में बार-बार पड़ने वाले अकाल की गंभीर समस्या की ओर अपने देशवासियों का ध्यान आकर्षित करने के लिये, लालाजी ने उस समय के देश के महान नेताओं से सम्पर्क किया। सबसे पहले वह 26 सितम्बर 1938 को हरिजन कालोनी, दिल्ली में महात्मा गांधी से मिले। इस मुलाकात का विवरण देते हुए, लालाजी लिखते हैं :

> सुबह की प्रार्थना सभा में शामिल होने के बाद, मैंने महात्मा गांधी से मुलाकात की। बातचीत के दौरान मेरे साथ पंडित नेकीराम शर्मा जी भी थे। गाँधी जी को अकाल पीड़ितों के दारुण-दुःख को सुनकर बहुत कष्ट हुआ। बाद में उन्होंने हमें आश्वासन दिया, "जो हो सकेगा, किया जायेगा।"[14]

उसी दिन लालाजी, डॉ० गोपीचन्द भार्गव को साथ लेकर, जो पंजाब असेम्बली में विपक्ष के नेता थे, प्रमुख कांग्रेसी नेताओं—मौलाना अबुल कलाम आजाद, यू० पी० के मुख्य मंत्री पंडित गोविन्द बल्लभ पंत, बम्बई कांग्रेस के नेता डॉ० एन० बी० खरे से मिले। इनके अतिरिक्त, लालाजी ने सेठ घनश्यामदास बिड़ला और बाबू बसंतलाल मुरारी को भी अकाल की गंभीरता से अवगत कराया। लालाजी की बात सुनने के बाद, इन सबने उन्हें अकाल-पीड़ितों की सहायता करने का आश्वासन दिया।

भूख से मरते हुए पशुओं की तकलीफ मिटाने के लिये, लालाजी 10 अक्तूबर 1938 को यू० पी० सरकार से मदद माँगने लखनऊ गये। इस यात्रा में पंडित नेकीराम शर्मा उनके साथ थे। लखनऊ में अपनी बातचीत का विवरण देते हुए, लालाजी लिखते हैं :

> पंडित गोविन्द बल्लभ पंत ने हमारी बात बहुत धैर्यपूर्वक सुनी। अपनी तरफ से सहायता का आश्वासन देते हुए उन्होंने बताया कि यू० पी० सरकार ने पहले ही अपने संबधित अफसरों को आदेश दे

दिये हैं कि वे हरियाणा के अकाल-पीड़ित पशुओं के लिये पास के जंगल खुले छोड़ दें। उन्होंने जिला हिसार के लिये मुफ्त चारा भेजने का भी आश्वासन दिया।[15]

इस सम्बन्ध में लालाजी व नेकीराम यू० पी० कांग्रेस अध्यक्ष बाबू मोहन लाल सक्सेना और जनरल सेक्रेटरी महावीर त्यागी से भी मिले। इन कांग्रेस पदाधिकारियों ने हरियाणा से लगते हुए यू० पी० जिलों के कांग्रेस नेताओं को बाद में आवश्यक निर्देश भी जारी किये।

29 नवम्बर 1938 को जब कांग्रेस अध्यक्ष नेताजी सुभाषचन्द्र बोस हिसार पधारे, तब लालाजी ने जिला कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी की हैसियत से उनका स्वागत-सत्कार किया। इस भीषण अकाल के लिये नेताजी ने विदेशी शासकों को जिम्मेदार ठहराया। साथ ही नेताजी ने राष्ट्र से अपील की कि हिसार के अकाल-पीड़ितों को हर प्रकार से सहायता पहुँचायी जाये।[16]

अकाल राहत कार्य के लिये लालाजी की मुलाकातें केवल कांग्रेसी नेताओं तक ही सीमित नहीं थीं। वह अक्सर सरकारी अधिकारियों से भी मिलते थे। जिले के उपायुक्त (डिप्टी-कमिश्नर) से लाला जी अक्सर मिलते रहते थे। उदाहरण के लिये, 5 मई 1939 को लालाजी, जिले के एक और नेता चौधरी लाजपतराय सिसाय को साथ लेकर, डी०सी० मिस्टर जी०सी० ब्रेंड्रा से मिलने गये और उनसे लम्बी बातचीत की। इस मुलाकात का हवाला देते हुए लालाजी लिखते हैं :

> मैंने उन्हें सुझाव दिया कि अकाल पीड़ित किसानों को वर्षा ऋतु से पहले मुफ्त बीज और बैल दिये जायें। काफी खुलकर चर्चा हुई, किन्तु डी.सी. महोदय ने किसी प्रकार का वचन नहीं किया।[17]

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, अकाल का संकट बढ़ता गया। उच्च अधिकारी अक्सर स्थिति का जायजा लेने के लिये आते थे। उदाहरणार्थ, अक्तूबर 1939 के पहले सप्ताह में अम्बाला डिवीजन के कमिश्नर महोदय सरकारी दौरे पर हिसार आये। अकाल पीड़ितों के प्रवक्ता की हैसियत से, लालाजी ने कमिश्नर साहब से भेंट की। लालाजी ने कमिश्नर साहब से अकाल पीड़ितों की शीघ्र जीवन-रक्षा करने की अपील की। यद्यपि

कमिश्नर महोदय ने सरकार के पास धन का अभाव होने पर खेद व्यक्त किया, फिर भी उन्होंने निम्नलिखित सहायता देने का वचन दिया :

– प्रस्तावित तालाबों की संख्या 14 से बढ़ाकर 28 कर दी जायेगी।
– कच्ची सड़कें आदि बनाने में और अधिक आदमी काम पर लगाये जायेंगे।
– प्रतिदिन की मजदूरी एक पैसा और बढ़ा दी जायेगी।
– रिश्वतखोरी की बुराई को रोकने की कोशिश की जायेगी।[18]

पंजाब के गवर्नर सर हर्बर्ट एमर्सन भी 8-9 नवम्बर 1939 को हिसार के दौरे पर आये। यहाँ के हालात का जायजा लेने के लिये वह बवानी-खेड़ा, जमालपुर, तोशाम और फतेहाबाद जैसी कुछ अकाल-पीड़ित जगहों पर गये। अपने दौरे में गवर्नर साहब लालाजी और कुछ अन्य व्यक्तियों से भी मिले। बताया जाता है कि गवर्नर साहब से लालाजी की मुलाकात कुल पाँच मिनट के लिये तय हुई थी, लेकिन आधे घंटे से भी अधिक तक चलती रही। लालाजी के तर्क से प्रभावित होकर गवर्नर साहब ने जिला अधिकारियों को राहत कार्य और तेज करने के आदेश दिये।

यह सही है कि पंजाब सरकार ने कुछ सकारात्मक कदम उठाये, किन्तु जिले के कुछ भ्रष्ट अधिकारियों के नकारात्मक रवैये के कारण सरकार द्वारा दी गई मदद पीड़ित लोगों को आधी-अधूरी मिल रही थी। एक सच्चे सामाजिक कार्यकर्त्ता होने के नाते, लालाजी ने इन अधिकारियों के नकारात्मक दृष्टिकोण का खुलकर विरोध किया।

लालाजी को जब कभी किसी कर्मचारी के द्वारा किये गये भ्रष्टाचार की जानकारी मिलती, वह फौरन जनता और उच्च अधिकारियों के सामने दोषी व्यक्ति की पोल खोल देते। किन्हीं-किन्हीं कर्मचारियों के अमानवीय दृष्टिकोण पर दुःख प्रकट करते हुए, लालाजी अक्सर कहते थे, 'जब ये कर्मचारी भूख से मरते हुए लोगों को भी नहीं बख्शते, तो आप सोच सकते हैं कि ये दूसरों के साथ क्या बर्ताव करते होंगे।''[19] इन भ्रष्ट कर्मचारियों का पर्दाफाश करने में लालाजी की पत्रिका *'ग्राम सेवक'* सबसे आगे थी। भ्रष्टाचार, विशेषकर रिश्वतखोरी, के कुछ उदाहरण देते हुए लालाजी *'ग्राम सेवक'* के जुलाई से सितम्बर 1938 के अंकों में लिखते हैं :

– कुछ पटवारी रिश्वतखोरी की बुराई में शामिल-शरीक हैं। वे गरीब किसान को तकावी बाँटते समय हर रुपये में एक आना काट लेते हैं और फी बैल दो रुपया लेते हैं। तहसील के कर्मचारी भी उसमें हिस्सा लेते हैं।

– मजदूर कैम्पों में न केवल पटवारी, बल्कि दूसरे कर्मचारी, इंजिनियर और क्लर्क भी दिहाड़ी पर काम करने वाले मजदूरों का शोषण करते हैं।

– जहाँ तक रेलवे कर्मचारियों का संबंध है, अकाल उनके लिये वरदान बना हुआ है।[20]

चूँकि ये सब भ्रष्टाचारी, सरकारी कर्मचारी थे इसलिये लालाजी बार-बार सरकार से इनके खिलाफ सख्त कार्रवाई करने के लिये कहते थे। 15 अप्रैल 1939 को *'ग्राम सेवक'* के अपने लेखन में लालाजी लिखते हैं, "इस भ्रष्टाचार को रोकने के लिये एक जाँच समिति बिठाई जानी चाहिये जो भ्रष्टाचार की शिकायतों की छानबीन करें और दोषी व्यक्तियों को उचित सजा दिलाये।"[21]

अनुभव यह बताता है कि सरकार तभी जनता की माँगों की सुनवाई करती है, जब वह चीख पुकार करती है। भ्रष्टाचार की बुराई से लड़ने के लिये, लालाजी ने जनता को अपने कर्तव्य का बोध कराया और *'ग्राम सेवक'* के लेख में उन्होंने जनता से निम्न बातों पर विशेष ध्यान देने के लिये कहा :

– भ्रष्टाचारियों से डरें नहीं।

– यदि कोई सरकारी मुलाजिम रिश्वत माँगता है, तो फौरन डी० सी० साहब के पास उसकी लिखित शिकायत करें और उसकी नकल 'कष्ट निवारक सभा' हिसार के पास भेजें।

– जाँच समिति के समक्ष निडर होकर अपना बयान दें।

– दोषी व्यक्ति के प्रति जात-पात का कोई ख्याल न करें।

– दोषी व्यक्ति को दंड दिलाना, हमारा धार्मिक कर्त्तव्य है।[22]

लालाजी भ्रष्ट तत्वों की तो आलोचना करते ही थे, सरकार के गलत कदमों का भी विरोध करते थे, सड़क बनाने वाले मजदूरों की दयनीय दशा

देखकर, लालाजी के मन को बड़ा आघात लगा। औरतों-बच्चों सहित गाँव के गरीब लोग इन योजनाओं के तहत दिहाड़ी पर मजदूरी करते थे। इन मजदूरों की दयनीय दशा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिये, लालाजी ने 30 सितम्बर 1939 को *'ग्राम सेवक'* में लिखा :

– मजदूरों को प्रतिदिन केवल पाँच पैसा मजदूरी दी जाती है, जो काफी नहीं है;
– कोई पेड़ या छाया की जगह नहीं हैं जहाँ मजदूर, विशेषकर औरतें और बच्चे, आराम कर सकें;
– कई मील पैदल चलने के बाद ही मजदूर काम करने वाली जगह पर पहुँच पाते हैं;
– कुपोषण या अन्य कारणों से बहुत से मजदूर 'रतौंधी' नामक बीमारी का शिकार हो गये हैं।[23]

लालाजी मंत्रियों द्वारा किये गये अनाप-शनाप खर्च का विरोध करते थे। उनकी राय में मंत्रियों को मितव्ययिता का पालन करना चाहिये, जिससे अधिक धन जरूरतमंदों पर खर्च किया जा सके। यदि कोई सरकारी उच्चाधिकारी उनकी इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता था, तो लालाजी खुले आम उसकी आलोचना करते थे। उदाहरणार्थ, लालाजी दिसम्बर 1938 में *'ग्राम सेवक'* में लिखते हैं :

> कुछ दिन पीछे पंजाब के प्रीमियर सर सिकन्दर हयात खां और मंत्री सर छोटूराम अकाल ग्रस्त क्षेत्रों का दौरा करने हिसार आये थे। उन्होंने 800/- रुपये का यात्रा भत्ता लिया, जबकि अकाल के राहत कार्य के लिये उन्होंने जो राशि मंजूर की वह केवल 550/- रुपये थी।[24]

लालाली यह मानते थे कि यदि कोई आलोचक विकल्प नहीं सुझाता, तो उसकी आलोचना व्यर्थ है। इसलिये वह अक्सर सरकार को व्यावहारिक सुझाव दिया करते थे कि किस प्रकार अकाल ग्रस्त लोगों की तकलीफों को दूर किया जाये। इस दिशा में उन्होंने भिन्न-भिन्न अवसरों पर सरकार को निम्नलिखित सुझाव दिये :

– पर्याप्त संख्या में नलकूप तुरन्त लगवाये जायें;

चूँकि अकाल की समस्या बहुत गम्भीर थी, लालाजी ने समाज के सभी वर्गों से, विशेषकर हरियाणवी भाइयों से, सहायता की अपील की। लालाजी ने सबसे एकजुट होकर काम करने के लिए कहा। लालाजी अप्रैल 1939 में लिखते हैं :

> मौजूदा हालात में समाज के सभी वर्गों को–चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, जमींदार हों या गैर-जमींदार, हरिजन हों या सवर्ण हिन्दू–अकाल की घोर विपत्ति का मिलकर सामना करना चाहिये। हरियाणा के सभी राजनैतिक नेताओं, विशेषकर चौधरी छोटूराम, को अपने पद और दलगत राजनीति को भुला कर और कंधे से कंधा मिलाकर हरियाणा की दुःखी जनता का कष्ट दूर करना चाहिये।[28]

ऊपर दिये गये लालाजी के सभी सुझावों का उद्देश्य अकाल का कारगर ढंग से समाधान करना था। लेकिन लालाजी बार-बार पड़ने वाले अकाल की समस्या के स्थायी समाधान के लिए अधिक चिन्तित थे। और वास्तव में इस समस्या का स्थायी हल था 'भाखड़ा बाँध योजना' का पूरा किया जाना।

सतलुज नदी पर बाँध बनाने का प्रस्ताव सबसे पहले पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर लुइस डेन ने 8 नवम्बर 1908 को अपने एक सरकारी नोट में किया था।[29] किन्तु 'भाखड़ा डैम स्कीम' के नाम से जाने वाली योजना प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) के बाद ही बनी। विश्वयुद्ध में हरियाणा के सैनिकों की शौर्यपूर्ण सेवाओं का जिक्र करते हुए पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर माइकल ओ डायर ने रोहतक और हिसार के दरबार में भाखड़ा बाँध योजना को कार्यान्वित करने के बारे में जनवरी 1919 में कुछ घोषणाएँ कीं।[30] चौधरी छोटूराम और उनकी पार्टी 'जमींदारा लीग' ने सन् 1937 के असेम्बली के चुनाव में हरियाणावासियों को यह आश्वासन दिया कि भाखड़ा बाँध योजना जल्दी पूरी की जायेगी। लेकिन लालाजी को तब बड़ा आघात पहुंचा जब सन् 1939 की गर्मियों में पंजाब के प्रीमियर सर सिकन्दर हयात खाँ ने इस योजना के बारे में अपनी असमर्थता व्यक्त की।

लालाजी को गरीबों के साथ सहज-सहानुभूति थी, इसलिये गरीब जनता को संगठित करने में उन्होंने अपनी शक्ति लगाई। उन्होंने हरियाणा का तूफानी दौरा किया और अनेक जनसभाओं को सम्बोधित किया। जनता को सम्बोधित करते हुए, लालाजी जुलाई 1939 में *'ग्राम सेवक'* में लिखते हैं :

> हमें पहले एक झंडे के नीचे इकट्ठे होकर संगठित होना है, और फिर सरकार को चेतावनी देनी है कि अगर भाखड़ा बाँध योजना 29 फरवरी 1940 तक लागू नहीं होती तो हम असहयोग आंदोलन छेड़ेंगे और सरकार में शामिल जमींदारा लीग के असेम्बली के सदस्यों को मजबूर करेंगे कि वे सरकार के साथ अपने सम्बन्ध विच्छेद कर लें।[31]

अपने आपको नहरों के इतिहास से परिचित कराने के लिये लालाजी ने नहरों के निर्माण का तुलनात्मक अध्ययन किया। भाखड़ा बाँध योजना की तुलना सोवियत यूनियन में उजबेकिस्तान की 'फरगना नहर योजना' से करते हुए, लालाजी लिखते हैं :

> फरगना नहर का काम 5 दिसम्बर 1939 को पाँच महीने की छोटी अवधि में पूरा कर लिया गया, और जहाँ तक हमारी भाखड़ा बाँध योजना का प्रश्न है, सरकार पिछले तीस वर्षों से बार-बार इसमें देरी करती आ रही है।[32]

फरगना नहर के इतनी तेजी से पूरी होने पर ध्यान देने से लालाजी को यह अनुभूति हुई कि एक 'स्वतंत्र देश' में और एक 'परतंत्र देश' में क्या अन्तर होता है। फरगना नहर के उदाहरण ने लालाजी के हृदय में छिपी हुई आशंका की पुष्टि की कि ब्रिटिश राज में भाखड़ा बाँध योजना शायद ही पूरी हो। लालाजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भाखड़ा योजना के पूर्ण होने का भरोसा आजादी के बाद ही किया जा सकता है। इसी प्रकार की भावनायें व्यक्त करते हुए, एक बार लालाजी ने लिखा था :

> उजबेकिस्तान के लोगों को पाँच महीने में नहर मिल गई, क्योंकि वे आजाद लोग हैं, किन्तु हमें तीस साल बीतने पर भी नहर नसीब नहीं हुई, क्योंकि हम आजाद नहीं हैं।[33]

इसलिये अकाल का पहला और अन्तिम समाधान है ब्रिटिश साम्राज्य का अन्त। इस बात की चर्चा करते हुए, लालाजी अक्तूबर 1939 में लिखते हैं :

> जब तक मुल्क गुलाम है, तब तक अकाल और भुखमरी जैसी विपत्तियाँ आती ही रहेंगी। एक आजाद मुल्क ही इन विपत्तियों से आजाद हो सकता है।[34]

उपरोक्त विवरण यह दर्शाता है कि लाला हरदेव सहाय ने अकाल पीड़ित मनुष्यों और पशुओं के कष्ट-निवारण के लिये क्या-क्या किया? किन्तु एक महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर दिया जाना अभी बाकी है और वह है, "उनके प्रयासों का परिणाम क्या निकला?" इसके उत्तर में हम कह सकते हैं :

- लालाजी को महिलाओं से विशेष सहानुभूति थी, विशेषकर जच्चा स्त्रियों से। सन् 1938-40 के अकाल के दौरान लालाजी की कोशिशों से 3,516 जच्चा स्त्रियों को मुफ्त घी, गेहूँ, गुड़, खांड और गोंद बाँटा गया।[35]
- लालाजी समाज के कमजोर वर्गों के हिमायती थे, इसलिये उन्होंने इस इलाके में रहने वाले अपंग लोगों की तरफ भी ध्यान दिया जिनकी संख्या लगभग दो हजार थी। ऐसे व्यक्तियों की सहायता के लिये उन्होंने हिसार, हांसी और सिरसा में मुफ्त केन्द्र खुलवाये।
- जहाँ तक आम आदमी की तकलीफों का सवाल है, लालाजी ने उनकी तरफ भी ध्यान दिया। जिन लोगों में आवश्यक वस्तुओं को खरीदने की सामर्थ्य नहीं थीं, उनकी लालाजी ने मदद की। नवम्बर 1939 से लेकर फरवरी 1940 तक के काल में लालाजी के द्वारा किये गये समाज-कल्याण कार्य का विवरण देते हुए, उस समय की एक पत्रिका लिखती है : "667 असहाय परिवारों को अनाज बाँटा गया। 12,049 नये कपड़े, जिनमें कमीज, लिहाफ, धोती, कामरी और घाघरा शामिल थे, और 4,015 पुराने कपड़े ज़रूरतमंद लोगों में बाँटे गए।"[36]

– कई जगहों पर सस्ती दुकानें खोली गईं जहाँ आटा, सब्जियाँ और दूसरी आवश्यक वस्तुएँ सस्ते भाव पर मिलती थीं।
– एक और असरदार काम जो लालाजी और उनके सहयोगियों ने किया, वह था–उन लोगों के लिये काम ढूँढ़ना जो काम कर सकते थे। इनमें कताई केन्द्र बहुत उपयोगी थे, क्योंकि इनमें काम करके हजारों जरूरमंद लोग अपनी रोजी कमा सकते थे।
– लालाजी ने एक और योजना बनाई जिससे गेहूँ की पिसाई का काम गाँव की औरतों को दिया जाये। यह काम सोलह कांग्रेसी स्वयंसेवकों की देख-रेख में 460 गाँवों में शुरू किया गया।[37] ऐसा करने से गाँव की गरीब औरतें दस आना प्रति मन पिसाई के हिसाब से कमा सकती थीं।

लालाजी उन गिने चुने महानुभावों में से थे जो पशुओं से सच्चा प्यार करते हैं। वह पशुओं के महत्व और उपयोगिता से भली-भाँति परिचित थे। उनकी राय में पशुधन की हानि से क्षेत्र का आर्थिक ढाँचा चरमरा जायेगा। अपने अनथक प्रयासों से लालाजी ने गाय के महत्व को समाज के सामने इतना उभारा कि देश की अनेक कल्याणकारी संस्थाओं ने अपनी सेवायें गो-सेवा के लिये अर्पित कर दी। इस काम का हवाला देते हुए, लालाजी लिखते हैं :

> सन् 1939 के अन्त तक हिसार जिले की 10,000 भूख से मरती हुई गउओं के रख-रखाव के लिए जीवदया मण्डल (बम्बई), हलवासिया ट्रस्ट (भिवानी), अकाल गोरक्षा सभा (दादरी), राजपूताना अकाल सेवा समिति (कलकत्ता) और गो सेवा मंडल (दिल्ली) के सहयोग से 2,50,000/- रुपये खर्च किये गये।[38] लालाजी ने गऊओं के अलावा सांडों को हृष्ट-पुष्ट बनाए रखने पर भी उचित ध्यान दिया और 'कांग्रेस कहत कमेटी' के सहयोग से 217 भूख से पीड़ित सांडों को पौष्टिक चारा दिया गया। यह विवरण केवल नवम्बर 1939 से फरवरी 1940 तक के चार महीने का है।[39]

लालाजी और उनके सहयोगियों ने अपने सेवा भाव से कुछ इस प्रकार का वातावरण बना दिया था कि जब भी ये सरकार से मदद करने को

आग्रह करते, सरकार मदद करती। लालाजी की जानकारी में पंजाब सरकार ने नवम्बर 1939 तक 41 लाख रुपये खर्च किये।[40] किन्तु एक सरकारी रिपोर्ट में कहा गया है कि, "सन् 1939-40 के अकाल में मनुष्यों और पशुओं की प्राण-रक्षा में सरकार को 3,21,54,963/- रुपये खर्च करने पड़े।"[41] इन सरकारी आंकड़ों में अतिशयोक्ति जान पड़ती है। यह रकम चाहे जो भी हो, पर इतनी बात स्पष्ट है कि तकावी बाँटने, मजदूरी देने, रेल के माल भाड़े में छूट देने, आबियाना माफ करने, कताई केन्द्रों को भुगतान करने और नये तालाब, कुएँ और कच्ची सड़कों के बनाने पर पंजाब सरकार ने लाखों रुपये खर्च किये।

लालाजी का बहुत-सी कल्याणकारी संस्थाओं और जनसेवा-भावी व्यक्तियों पर काफी प्रभाव था। लालाजी को उनसे अच्छी खासी रकम मिली (व्यक्तिगत दानियों की सूची, परिशिष्ट नं० 3 में देखिये)। लालाजी के कथनानुसार कांग्रेस कहत कमेटी ने जून 1939 तक 5,02,275/- रुपये की रकम राहत कार्य के लिये इकट्ठी की। यह रकम उसके अतिरिक्त है जो अनाज, चारा, कपड़ा या अन्य वस्तुओं के रूप में दी गई। दान-चन्दा इकट्ठा करने की यह प्रक्रिया अकाल के अन्त तक चलती रही।[42]

अकाल की विभीषिका की ओर अनेक सरकारी कर्मचारियों और उच्च-अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट करने में लालाजी को बहुत सफलता मिली। उदाहरण के लिये, जिन दिनों अकाल अपने उग्रतम रूप में था, हिसार के उपायुक्त (डी०सी०) अकाल-पीड़ितों के घरों में गये; पंजाब के स्वास्थ्य विभाग के निदेशक महोदय ने बीमारों का सर्वेक्षण किया; पंजाब के मंत्रियों ने हिसार जिले का बार-बार दौरा किया; पंजाब के गवर्नर और प्रीमियर ने जनता के राहत कार्य के लिये चन्दा देने की अपील की और हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल लार्ड लिनलिथगो ने 6 अगस्त 1939 को जिला हिसार का सरकारी दौरा किया। जिला हिसार को 'अकाल ग्रस्त इलाका' भी घोषित किया गया।

हिसार के अकाल के बारे में देश के महान नेताओं की जो प्रतिक्रिया हुई वह भी उल्लेखनीय है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपनी पत्रिका *'हरिजन'* में देश से अकाल में सहायता करने की अपील की।[43] नवम्बर

1938 में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने हिसार और रोहतक के मंचों से बोलते हुए, देशवासियों से उदारता पूर्वक सहायता करने की अपील की। 29 नवम्बर 1938 को नेताजी ने हिसार के निकट अकाल-ग्रस्त गांव धान्सू का दौरा किया।[44] इनके अतिरिक्त, पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अकाल पीड़ितों की सहायता करने के लिये जनता से प्रार्थना करते हुए मार्च 1940 में निम्नलिखित प्रेस विज्ञप्ति जारी की :

> जिला हिसार में अकाल की हालत बहुत लम्बे अरसे से बनी हुई है और राहत पहुँचाने के लिये बहुत छोटे पैमाने पर काम हुआ है। मुझे आशा है कि देश की जनता हिसार की कांग्रेस कमेटी को, जो इस अकाल में मदद करने की कोशिश कर रही है, हर प्रकार की सहायता देगी।[45]

पंजाब प्रांत के लगभग सभी प्रमुख नेता, जिनमें डॉ० सैफुद्दीन किचलू, डॉ० गोपीचन्द भार्गव और सरदार सोहन सिंह जोश शामिल थे, इस इलाके में आये और अकाल पीड़ितों को हर प्रकार की सहायता का आश्वासन दिया। पंजाब विधानसभा के कांग्रेसी सदस्यों ने अक्सर विधानसभा में अकाल का प्रश्न उठाया। विधान सभा में इसी विषय पर एक चर्चा का जिक्र करते हुए, लालाजी दिसम्बर 1939 में लिखते हैं :

> अभी कुछ दिन पीछे अकाल राहत कार्य में सरकारी कर्मचारियों की लापरवाही की चर्चा सदन में हुई। कांग्रेस सदस्यों—सरदार कपूर सिंह और चौधरी मुहम्मद हुसैन—ने चर्चा में सक्रिय भाग लिया।[46]

पंजाब के नेताओं के अतिरिक्त, दूसरे विशिष्ट व्यक्ति भी हिसार पधारे। इनमें कुछ प्रमुख नाम हैं—'जीव दया मंडल' बम्बई के नेता जे० एन० मानकर, हरिजन सेवा संघ के जनरल सेक्रेटरी ठक्कर बापा और बिहार मंत्रिमंडल के सदस्य चौधरी जुगलाल।

उपर्युक्त तथ्यों और आँकड़ों से पता चलता है कि अकाल पीड़ितों के लिये व्यक्तियों, संस्थाओं और सरकारी अधिकारियों ने बहुत-सा धन तथा सहायता सामग्री उपलब्ध करायी। फिर भी यहाँ एक प्रश्न मन में

उठता है, "क्या लालाजी इस सहयोग व सहायता से संतुष्ट थे?" इसका उत्तर लालाजी के ही शब्दों में :

> अकाल भयंकर था, किन्तु भारत सरकार ने उस पर गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया। कांग्रेस एक राष्ट्रीय पार्टी है, किन्तु यह भी अकाल के काम में उचित ध्यान नहीं दे सकी, फिर हम 'हिन्दू महासभा' और 'मुस्लिम लीग' के बारे में क्या कह सकते हैं? वे लोग तो इस समस्या के समाधान के लिए एक मिनट का समय भी नहीं निकाल पाये। देश में बहुत से करोड़पति हैं और उन्होंने सहायता की, किन्तु उतनी नहीं जितनी वे कर सकते थे।[47]

यह अध्याय इस प्रश्न का उत्तर दिये बिना अधूरा रह जाएगा कि 'इतिहास अकाल पीड़ितों की सहायता में लालाजी के योगदान का मूल्यांकन किस प्रकार करेगा ?"

यह पहले ही बताया जा चुका है कि 1938-40 के अकाल में जिला हिसार में लगभग तीस हजार व्यक्ति और पाँच लाख पशु मारे गए। ऐसी हालत में कोई भी यह प्रश्न पूछ सकता है, "यदि इतना बड़ा नुकसान हुआ, तो लालाजी की सेवाओं की क्या उपयोगिता थी?" इसका सरल उत्तर यह है, "यदि लालाजी न होते, तो नुकसान निश्चित रूप से इससे भी कहीं अधिक होता।"

हरियाणा केसरी पं० नेकीराम शर्मा के बाद लाला हरदेव सहाय ही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने अकाल के इस प्रश्न को जिला स्तर से उठाकर राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाया। लालाजी का एक और महत्त्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने पं0 नेकीराम शर्मा के साथ मिलकर भाखड़ा बाँध योजना के लिए एक जन आंदोलन आरम्भ किया। यहाँ पर यह बताना भी जरूरी है कि सरकार के अन्दर रहकर सर छोटूराम ने भी इस योजना को लागू करवाने में अहम भूमिका निभाई है। यह और बात है कि भारत सरकार ने पहले उसे द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45) के कारण और बाद में देश के विभाजन के कारण टाल दिया। अन्ततः यह नहर बन कर पूरी हुई 8 जुलाई 1954 को। प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने इसका उद्घाटन किया। यह नहर निःसन्देह आज के दिन, हरियाणा प्रांत की

'जीवन रेखा' है। अतः आने वाली पीढ़ियाँ इस बात को भुला नहीं पायेंगी कि लालाजी ने बागड़ क्षेत्र के लोगों व पशुधन की रक्षा हेतु कोई कसर नहीं छोड़ी। लाला हरदेव सहायक की निःस्वार्थ सेवाओं को ध्यान में रखते हुए, भारत का इतिहास निःसन्देह उन्हें 'दीन-दुःखियों के सच्चे सहायक' के रूप में सदैव याद करता रहेगा।

सन्दर्भ

1. *Irrigation in Hissar District* (Shimla, 1954), p. 4.
2. वही, पृष्ठ 3.
3. वही.
4. *ग्राम सेवक*, 15 नवम्बर 1939.
5. वही, 31 मई 1939.
6. AICC File No. 5-17, Part III, 1938-40;
   एवं *ग्राम सेवक*, 1 फरवरी 1940.
7. *The Diaries of Dr. Ramji Lal Hooda* (Hisar, 1989), p. 289.
8. *ग्राम सेवक*, 15 अक्तूबर 1938.
9. वही, 15 मार्च 1940.
10. वही, 15 अक्तूबर 1938.
11. वही, 15 मई 1939.
12. वही, 31 मई 1939.
13. पतराम वर्मा, *अमर गाथा–जिला हिसार के स्वतंत्रता सेनानी* (हिसार, 1982), पृष्ठ 93.
14. *ग्राम सेवक*, 15 अक्तूबर 1938.
15. वही, 31 अक्तूबर 1938.
16. Fortnightly Report (Punjab), Home Political File No. 18/21/1938.
17. *ग्राम सेवक*, 15 मई 1939.
18. वही, 15 अक्तूबर 1939.
19. वही, 15 सितम्बर 1938.
20. वही, 31 जुलाई, 31 अगस्त व 15 सितम्बर 1938.
21. वही, 15 अप्रैल 1939.
22. वही, 31 जुलाई व 15 सितम्बर 1938.
23. वही, 30 सितम्बर 1938 व 31 अक्तूबर 1939.
24. वही, 15 दिसम्बर 1938.
25. वही, 1938-40.

26. वही, 15 अगस्त 1936 व 15 अप्रैल 1339.
27. वही, 28 फरवरी, 15 जुलाई व 31 अगस्त 1939.
28. वही, 15 अप्रैल 1939.
29. *Irrigation in Hissar District, op. cit.*, p. 5.
30. हरि सिंह, *दीनबन्धु चौ० सर छोटूराम : जीवन चरित* (रोहतक-1984), पृ0 19.
31. *ग्राम सेवक*, 31 जुलाई 1939.
32. *The Tribune*, 20 January 1940;
एवं *ग्राम सेवक*, 31 जनवरी 1940.
33. *ग्राम सेवक*, 31 जनवरी 1940.
34. वही, 31 अक्तूबर 1939.
35. वही, 15 जनवरी व 15 मार्च 1940.
36. वही, 15 मार्च 1940.
37. वही, 15 जनवरी 1940.
38. वही, 31 दिसम्बर 1939.
39. वही, 15 मार्च 1940.
40. वही, 30 नवम्बर 1939.
41. *Irrigation in Hissar District, op. cit.*, p. 5.
42. ग्राम सेवक, 15 जुलाई 1939.
43. *'हरिजन'*, 1938-39.
44. *The Tribune, 30 November 1938.*
45. *The National Herald, 6 March 1940.*
46. *ग्राम सेवक*, 15 दिसम्बर 1939.
47. वही, 15 फरवरी 1940.

वनस्पति घी का विरोध

'वनस्पति घी' शब्द उन खाद्य तेलों के लिये प्रयोग किया जाता है जिनका शोधन करने के बाद हाइड्रोजनीकरण किया जाता है। इसे बनाने की प्रक्रिया के दौरान, निकिल धातु के साथ-साथ इन तेलों में हाइड्रोजन का समावेश किया जाता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप यह तेल, जो साधारणतया तरल अवस्था में होता है, जमकर घी जैसा हो जाता है और इसका स्वाभाविक रंग एवं गंध लुप्त हो जाते हैं। इसमें कुछ बनावटी सुगन्धि भी मिलाई जाती है। अन्ततः इसका रंग-रूप घी जैसा लगता है। इस प्रकार का 'कृत्रिम घी' बाजार में 'वेजीटेबिल घी' या 'वनस्पति घी' या सिर्फ 'वनस्पति' के नाम से खरीदा-बेचा जाता है।

चूँकि वनस्पति घी भारतीय जन-जीवन को बुरी तरह से प्रभावित करता था, इसलिये एक सामाजिक कार्यकर्त्ता की हैसियत से लाला हरदेव सहाय ने इस घी में दिलचस्पी दिखाई। पहले उन्होंने यह पता लगाया कि इस घी की उत्पत्ति कहाँ से हुई। पता चला कि इस कृत्रिम घी का आविष्कार कुछ जर्मन वैज्ञानिकों द्वारा भारी-भरकम मशीनों की चिकनाई हेतु एक ग्रीस के रूप में किया गया था।[1] फिर लालाजी ने इसके भारत में आयात का इतिहास मालूम किया। लालाजी लिखते हैं, "सबसे पहले इस वनस्पति घी का आयात सन् 1927 में हालैंड से हुआ और बाद में बेल्जियम और जर्मनी से।"[2]

जैसे-जैसे दिन बीतते गये भारत में वनस्पति की माँग बढ़ती गई। आगे चलकर तो देश में अपना वनस्पति उद्योग स्थापित हो गया। सन् 1937 तक पाँच फैक्टरियाँ खुल गईं जिनमें 25,000 टन वनस्पति का उत्पादन होता था। चूँकि इस उद्योग में मुनाफा बहुत था, सन् 1945 में इन फैक्टरियों की संख्या बढ़कर 16 हो गई जो साल में 1,37,000 टन वनस्पति का उत्पादन करती थीं। लालाजी के जीवन के अंत (सन् 1962)

तक तो वनस्पति उद्योग भारत का प्रमुख उद्योग बन चुका था।

अब विचारणीय यह है कि, "वनस्पति के लक्षण क्या हैं और यह हानिकारक क्यों है?" आचार्य विनोबा भावे, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, के०जी० मशरूवाला, जे०सी० कुमारप्पा, डॉ० दातार सिंह, डॉ० सतीशचन्द्र दास गुप्ता इत्यादि अनेक गांधीवादी विचारकों सहित लालाजी की भी राय थी कि निम्नलिखित कारणों से वनस्पति मानव-जीवन के लिये हानिकारक है :

- वनस्पति में स्टिचरिक ग्लीसरीन होती है जिसे मनुष्य का पाचन-तंत्र हजम नहीं कर पाता और वह अनपचा ही बाहर निकल जाता है।
- वनस्पति के पिघलने का तापमान 45^0 सेंटीग्रेड हैं जो मनुष्य के शरीर के तापमान 27.8 सेंटीग्रेड से कहीं अधिक है।
- वनस्पति में निकिल एक धातु के रूप में विद्यमान रहता है। औषधि विज्ञान की दृष्टि से कोई भी भारी धातु जब थोड़ी मात्रा में भी लम्बे अरसे तक ली जाती है तो कुल मिलाकर जहर का रूप धारण कर लेती है।

वनस्पति का स्वभाव जहरीला होने के विषय में लालाजी गांधीजी के निम्नलिखित दृष्टिकोण से सहमत हैं :

> किसी भी व्यक्ति को वनस्पति से किसी प्रकार का कलह या विवाद नहीं हो सकता, क्योंकि वनस्पति का अर्थ है पत्तियाँ, फल-फूल और सब्जियाँ। किन्तु जब और कोई बनावटी वस्तु वनस्पति के नाम से प्रयोग की जाती है, तो वह जहर हो जाती है। इसलिये कारखानों में तैयार किया गया वनस्पति, न तो घी है और न ही घी हो सकता है।[3]

इस विषय में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के विचार भी तर्क-संगत हैं। वनस्पति को घी मानने से इंकार करते हुए, वह लिखते हैं :

> जहाँ तक हम समझते हैं, घी हमेशा गाय या भैंस के दूध से बनता है, जबकि वनस्पति हमेशा तेलों से बनता है। इसलिये 'वनस्पति' के साथ 'घी' शब्द हर्गिज नहीं जोड़ा जाना चाहिये।[4]

अपने जीवन में लालाजी ने कभी वनस्पति को घी नहीं माना। वह इसे हमेशा 'नकली घी' कहते थे। लालाजी यह बात भली-भाँति जानते थे कि शुद्ध घी मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये कितना उपयोगी है। परम्परा से नवजात शिशु को शुद्ध घी, विशेषकर गाय के घी के साथ, शहद चटाया जाता है और मृत्यु के बाद भी जब शरीर चिता पर रखा जाता है तो मुख में शुद्ध घी डाला जाता है। गाँवों में एक बात आम कही जाती है, 'घी सँवारे काम, बड़ी बहू का नाम।' इसके अतिरिक्त, भारत में सौ साल पुराना घी मिलना असाधारण बात नहीं थी और बहुत से खानदानी रईस परिवार काफी मात्रा में पुराने घी का भण्डार रखते थे।

लालाजी ने शुद्ध घी के इतिहास का अध्ययन किया। वह वैदिक युग की निम्नलिखित लोकोक्ति का अक्सर हवाला देते थे, 'घी ही आयु है।' चार्वाक दर्शन के इस वाक्य से वे अत्यधिक प्रभावित थे, "जब तक जियो सुख से जियो; ऋण ले लेकर भी घी पियो।" लालाजी का विश्वास था कि शुद्ध घी के आविष्कार का श्रेय भारत को ही है और घी की जानकारी विश्व को भारत से ही हुई। जापान का एक उदाहरण देते हुए, लालाजी सन् 1946 में लिखते हैं :

> जापान को दूध और घी का ज्ञान पहली बार पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में हुआ, जब कुछ भारतीय बौद्ध भिक्षु वहाँ पहुँचे। जापान में घी को आज भी 'इन्डाना आबुरा' के नाम से जाना जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ है, 'भारत का तेल'।[5]

शुद्ध घी के गुणों को ध्यान में रखते हुए, लालाजी हमेशा यह विश्वास करते थे कि भारत मुख्यतः शाकाहारी देश है और यहाँ घी की खपत में कमी होने से लोगों के स्वास्थ्य पर उल्टा असर पड़ेगा। भारत का खान-पान मुख्यतः दूध और घी पर निर्भर है। अतः वह दूध और दूध से बनी हुई चीजों के सेवन से ही जीवित रह सकता है।[6]

शुद्ध घी और वनस्पति का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद, लालाजी ने नकली घी के प्रयोग से होने वाले खतरों से देशवासियों को आगाह किया। लालाजी ने तमाम आँकड़े इक्ट्ठे किये और वनस्पति से होने वाली निम्नलिखित हानियाँ बताईं :

– द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45) में पहली बार सैनिकों को वनस्पति खिलाया गया। इसके परिणामस्वरूप उनका हाजमा बिगड़ गया और वे बदहजमी की शिकायत करने लगे।[7]

– सरकारी अनुसंधानशाला, इज्जतनगर (जिला बरेली, यू०पी०) में चूहों के ऊपर वनस्पति के प्रभाव का परीक्षण किया गया। परीक्षण का परिणाम यह निकला कि जिन चूहों को वनस्पति खिलाया गया, उनकी तीसरी पीढ़ी अंधी हो गयी।[8]

वनस्पति का विरोध करते हुए लालाजी ने 1960 में दो बहुत सरल किन्तु प्रभावी तर्क व्यंग्तात्मक भाषा में दिये :

– यदि वनस्पति वास्तव में स्वास्थ्य के लिये अच्छा है, तो वनस्पति-निर्माता अपने और अपने परिवार के लिये देशी घी क्यों इस्तेमाल करते हैं ?

– यदि वनस्पति वास्तव में स्वास्थ्य वर्द्धक है, तो वह राष्ट्रपति भवन या प्रधान मंत्री के निवास तीन मूर्त्ति में क्यों नहीं प्रयोग किया जाता ?[9]

लालाजी को एक और शिकायत इस बात की थी कि वनस्पति स्वास्थ्य के लिये तो हानिकारक है ही, यह शुद्ध घी की कीमत पर फल-फूल रहा है। गांधी जी के शब्दों में 'शुद्ध घी भारत का सबसे बड़ा कुटीर उद्योग है।' देशी घी के उत्पादन में करोड़ों लोग लगे हुए थे और इससे जो थोड़ी बहुत नकद आमदनी हो जाती थी वह वनस्पति ने उनसे छीन ली। शहरों से दूर रहने वाले किसान अपना दूध घी के अतिरिक्त और किसी रूप में नहीं बेच सकते थे। गाँव की परिस्थितियाँ में केवल घी ही कुछ समय तक के लिये भण्डारण किया जा सकता था। इसलिये गाँव में अतिरिक्त दूध का अधिकतर उपयोग घी बनाने में किया जाता था। एक अनुमान के अनुसार, 'सन् 1936 में कुल 69 करोड़ मन दूध का उत्पादन हुआ, उसमें से 31.2 प्रतिशत दूध के रूप में इस्तेमाल हुआ और 52.7 प्रतिशत घी बनाने में इस्तेमाल हुआ।[10] इस प्रकार घी का कुटीर उद्योग न केवल किसानों को नकद रकम कमाने में मदद करता है बल्कि उनका स्वास्थ्य बनाये रखने में भी मदद करता था, क्योंकि घी बनाने के बाद जो छाछ

बच जाती थी वह बहुत स्वास्थ्य-वर्द्धक होती थी। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, 'सन् 1941 में छाछ का कुल उत्पादन 6,075 लाख मन था।"[11]

लालाजी के अनुसार देशी घी का कुटीर उद्योग किसान के लिये बहुत बड़ा सहारा था, विशेषकर अकाल के दिनों में। लालाजी ने हिसार जिले में वनस्पति के आने के पहले और बाद के अकालों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात लिखा है :

> सन् 1899-1900 में हिसार में भीषण अकाल पड़ा, किन्तु उन दिनों में घी के कुटीर उद्योग की वनस्पति जैसी सस्ती चीज से कोई होड़ नहीं थी। इसलिये किसान उचित मूल्य पर घी बेचकर अपने छः लाख पचीस हजार पशुओं में से चार लाख पशुओं की रक्षा कर सके। लेकिन सन् 1938-40 के अकाल में साढ़े छः लाख पशुओं में से केवल दो लाख बचाये जा सके। और यह सब इस तथ्य के बावजूद हुआ कि पंजाब सरकार और दूसरी कल्याणकारी संस्थाओं ने एक करोड़ रुपये से अधिक अकाल राहत कार्यों पर खर्च किया, जबकि 1899-1900 के अकाल में कुछ भी खर्च नहीं किया गया था।[12]

अर्थशास्त्र के 'ग्रेशम-सिद्धांत' से सहमति जताते हुए कि 'घटिया वस्तु बाजार से श्रेष्ठ वस्तु को खदेड़ देती है', लालाजी ने माना कि बड़े पैमाने पर नकली घी का उत्पादन भी इसी प्रकार से शुद्ध घी को बाजार से खदेड़ देगा। लालाजी के द्वारा एकत्रित निम्नलिखित आंकड़े इस आशंका को सही सिद्ध करते हैं :

> सन् 1937 में वनस्पति का उत्पादन 6,50,000 मन था जो बढ़कर सन् 1956 में 89,60,000 मन हो गया। इसके विपरीत शुद्ध घी का उत्पादन सन् 1937 में 2,30,00,000 मन था जो सन् 1956 में घटकर केवल 1,08,92,000 मन रह गया।[13]

लालाजी के अनुसार एक और जो बड़ी हानि वनस्पति से हुई वह थी पशुधन की बरबादी। ग्रामीण क्षेत्र की अर्थव्यवस्था शुद्ध घी पर भी आधारित थी। यह अर्थव्यवस्था वनस्पति के आने से अस्त-व्यस्त हो गई।

इस विषय पर प्रकाश डालते हुए, लालाजी लिखते हैं :

> सन् 1936 में पशुधन से होने वाली आय 1,908 करोड़ 50 लाख रुपये थी और खेती बाड़ी से थी 2,000 करोड़ रुपये। इस प्रकार पशुधन से होने वाली आय लगभग उतनी ही थी जितनी खेती से, और किसान, पशुपालन तथा खेती दोनों ही काम करता है।[14]

लालाजी इस बात को भली-भाँति समझते थे कि यदि वनस्पति का व्यापार पनपता है तो शुद्ध घी का अस्तित्व बाजार में नहीं रह पाएगा। लालाजी को आशंका थी कि "यदि यह प्रक्रिया एक बार शुरू हो गई, तो ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को इतना अधिक नुकसान पहुँचेगा कि अच्छे पशुओं की रक्षा व्यावहारिक रूप से असम्भव हो जायेगी।" लालाजी आगे लिखते हैं :

> यदि किसी उद्योगपति को वित्तीय घाटा होता है, तो वह अपना उद्योग बन्द कर देगा। इसी प्रकार, बेचारा किसान अपना घाटा कैसे सहे ? उसे अपने उत्पादन के साधन, अर्थात् गऊ को बेचना पड़ेगा। इन परिस्थितियों में गऊ का खरीददार केवल कसाई ही होगा।[15]

इसलिये लालाजी हमेशा वनस्पति को गऊ हत्या को बढ़ावा देने वाली खतरनाक वस्तु के रूप में देखते थे। वह बार-बार कहते थे कि वनस्पति एक ऐसे किस्म का जहर है जो परोक्ष रूप में बढ़े पैमाने पर पशुधन को नष्ट करता है। उनके विचार गांधीवादी विद्वानों, विशेषकर जे०सी० कुमारप्पा, से मिलते थे जिन्होंने सन् 1947 में लिखा था :

> भारतवर्ष की अर्थव्यवस्था गाय पर केन्द्रित है। हमें गाय की आवश्यकता हल चलाने, गाड़ी चलाने और दूध देने के लिये है। इसलिये कोई ऐसा कदम, जो गऊ की रक्षा में प्रतिकूल प्रभाव डालता हो, हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित किये बिना न रह सकेगा। यदि हम इस बात को सही ढंग से देखें तो वनस्पति का उत्पादन गऊ वध के समान है।[16]

पशुधन को नष्ट करने के अतिरिक्त, लालाजी की राय में, वनस्पति एक अन्य कुटीर उद्योग को भी नष्ट कर रहा था, और वह था कोल्हू या घानी उद्योग। तिलहन से तेल निकालना मूलतः गाँव का उद्योग था। यह

उपभोक्ताओं को ताजा तेल प्रदान करता था, जिसके शुद्ध करने की भी आवश्यकता नहीं होती थी। इसका एक महत्वपूर्ण उपफल होता था खली जो वसा और प्रोटीन से भरपूर होती थी और जिसे पशुओं को खिलाया जाता था। इसके अतिरिक्त, घानी उद्योग में न तो वितरण, न यातायात और न ही पैंकिंग आदि का खर्चा पड़ता था।

कोल्हू और घानी उद्योग को धक्का लगने से भारतीय अर्थव्यवस्था को काफी ठेस पहुँची। इसी कुटीर उद्योग की प्रशंसा में लालाजी ने एक बार ठीक ही लिखा था :

- घानी उद्योग बड़ी संख्या में ग्रामीणों को रोजगार उपलब्ध कराता था।
- घानी उद्योग में खराब किस्म के तेल की मिलावट करने की सम्भावना बहुत कम थी।
- घानी उद्योग का पशुपालन या घी-दुग्ध उद्योग से किसी प्रकार का विरोध नहीं था।

वनस्पति का एक और बुरा प्रभाव यह हुआ कि इससे बेरोजगारी और भुखमरी बढ़ने लगी। लालाजी के अनुसार, यदि वनस्पति उद्योग ने कुछ हजार लोगों को रोजगार दिया तो उसके साथ ही उसने उन करोड़ों लोगों के हाथ से रोजगार छीन भी लिया जो शुद्ध घी बनाने या घानी के लोकप्रिय कुटीर उद्योग में लगे हुए थे।

लालाजी की दृष्टि में वनस्पति का जो सबसे बुरा असर हुआ वह यह कि इससे 'मिलावट' की शुरुआत हो गई और 'व्यापारिक नैतिकता' में बहुत गिरावट आई। अब वनस्पति को शुद्ध घी के साथ मिलाने की प्रथा चल पड़ी जिससे स्थिति प्रतिदिन खराब होती गई। वनस्पति और शुद्ध घी की कीमतों में बहुत अन्तर था, इसलिये दुकानदारों को मिलावट करने में बहुत मुनाफा था। वनस्पति आमतौर पर शुद्ध घी के एक तिहाई मूल्य पर मिलता था और मिलावट के पता लगाने का कोई आसान व भरोसेमंद तरीका नहीं था। वनस्पति और शुद्ध घी के रूप-रंग में काफी समानता होने के कारण अधिकतर वनस्पति शुद्ध घी में मिलावट के लिये इस्तेमाल किया जाता था। दुर्भाग्यवश, घी में मिलावट की बुराई शहर

और देहात में एक समान फैल गई। इस समस्या पर टिप्पणी करते हुए, 'रायल एग्रीकल्चरल कमीशन' के सदस्य डॉ० एन०सी० राइट लिखते हैं : 'कुल मिलाकर वनस्पति के सकल उत्पादन का लगभग 90 प्रतिशत शुद्ध घी में मिलावट के काम आता है।'[17] मिलावट के प्रश्न पर लालाजी आचार्य विनोबा भावे के विचारों से सहमत थे जिन्होंने एक बार कहा था :

> नकली घी, जो वनस्पति घी के गलत नाम से जाना जाता है, बहुत बड़ा धोखा है। इसका रंग और बाह्य रूप बिल्कुल असली घी की तरह बनाये गये हैं, इसलिये शुद्ध घी में इसकी मिलावट करके जनता को धोखा देना एक आम बात हो गई है।[18]

इस प्रकार की आम मिलावट से शुद्ध घी खरीदने वालों के मन पर विपरीत प्रभाव पड़ा। जब उपभोक्ता को ज्यादा कीमत पर भी शुद्ध घी मिलने का भरोसा न रहा, तो स्वाभाविक था कि लाचार होकर उसने सस्ते दामों में वनस्पति ही खरीदना शुरू कर दिया। एक अनुमान के अनुसार, "सन् 1937 से 1956 के दौरान, वनस्पति की माँग 83,10,000 मन बढ़ गई, किन्तु इसके विपरीत शुद्ध घी की माँग में 1,21,08,000 मन की भारी कमी हुई।"[19] लालाजी का मनना था कि वनस्पति को रंग-रूप में शुद्ध घी जैसा बनाना, ग्राहकों को सरा-सर धोखा देना था। इस धोखे को मद्देनजर रखते हुए, लालाजी प्रमुख गांधीवादी अर्थशास्त्री राधाकृष्ण बजाज के विचारों से सहमत थे जिन्होंने एक बार लिखा था :

> क्या यह धोखा नहीं है कि तेल को घी जैसा रंग-रूप और गंध दी जा रही है? इसी धोखे के कारण वनस्पति उद्योग मुख्यतः फला-फुला है।[20]

जो बात लालाजी को बेहद मानसिक कष्ट दे रही थी, वह थी देशवासियों का नैतिक पतन। मिलावट की बुराई के फलस्वरूप, शीघ्र ही वह दिन आ गया जब व्यापारी बिना लाज-शर्म के खाद्य पदार्थों में मिलावट करने लगे, झूठा प्रचार एक कला हो गई और जनता की दृष्टि में शुद्ध घी के व्यापार में आस्था नहीं रही। लालाजी प्रायः अपने भाषणों और लेखों में कहा करते थे कि मिलावट की प्रवृत्ति ने भारत की

व्यापारिक नैतिकता को आघात पहुँचाया है। वनस्पति के दुष्परिणामों को संक्षेप में बताते हुए, लालाजी दुःखी मन से लिखते हैं :

> वनस्पति ने न केवल हमारे पशुधन को नष्ट किया है, बल्कि इसने घी, दूध दवाइयों, तेलों, दालों, नमक और मसालों तक में मिलावट को बढ़ावा दिया है। वास्तव में वनस्पति, मिलावट और भ्रष्टाचार की जननी है।[21]

अभी तक 'वनस्पति के स्वरूप और विस्तार' विषय पर, लालाजी का क्या दृष्टिकोण है कि चर्चा की गई। इस बात की चर्चा अभी बाकी है कि लालाजी ने वनस्पति के प्रसार का किस प्रकार विरोध किया। अपने लम्बे सार्वजनिक जीवन में लालाजी ने जनता और नेताओं को यह समझाने की कोशिश की कि वे वनस्पति को बाजार से निकाल बाहर करने में सहयोग करें। वह अक्सर उपभोक्ताओं से अपील करते थे : "हमेशा शुद्ध घी खरीदें; यदि शुद्ध घी उपलब्ध न हो तो शुद्ध तेल खरीदें, किन्तु वनस्पति किसी भी हालत में न खरीदें।" लालाजी चाहते थे कि वनस्पति पर कानूनी प्रतिबंध लगाया जाये। एक क्रियाशील नेता की हैसियत से वह भली-भांति जानते थे कि जनता के सक्रिय समर्थन के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिये वह बार-बार आह्वान करते थे कि जनता एकजुट होकर वनस्पति का विरोध करे। उदाहरण के लिये, सन् 1946 में उन्होंने जनता से कहा कि वह जन-आंदोलन छेड़ दें और सरकार को वनस्पति पर तुरन्त प्रतिबंध लगाने का कानून बनाने के लिये मजबूर करें। जनता को आगाह करते हुए, उन्होंने सन् 1946 में कहा :

> अगर हम वनस्पति के ऊपर, जो जहर के सिवा और कुछ नहीं है, अभी पाबन्दी लगाने में कामयाब नहीं होते हैं तो हमारी युवा पीढ़ी मुश्किल से पाई हुई आजादी के फल से वंचित रह जायेगी।[22]

लालाजी ने 'अखिल भारतीय वनस्पति विरोध समिति' की स्थापना की जिसने वनस्पति के विरुद्ध राष्ट्रव्यापी आंदोलन चलाया।[23] देश के संभ्रान्त नागरिकों को विश्वास दिलाने के लिये उन्होंने दो पुस्तकें सन् 1946 और 1947 में लिखीं जिनके नाम हैं– *'मीठा जहर'* और *'देश के*

दुश्मन'। लालाजी के अनथक प्रयास से सरकार को असंख्य पत्र और तार भेजे गये कि वह वनस्पति पर पाबन्दी लगाये।

लालाजी सम्भवतः एकमात्र भारतीय थे जिन्होंने अपने इलाके के सैकड़ों गाँवों का भ्रमण करके ग्रामवासियों को वनस्पति की बुराई से परिचित कराया। कई गाँवों की पंचायतों ने अपने-अपने गाँवों में वनस्पति के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाने का फैसला किया।[24]

वनस्पति के उत्पादन पर प्रतिबंध लगाना कठिन कार्य था, इसलिये लालाजी ने कुछ सांसदों से सम्पर्क किया। सन् 1950 में उन्होंने अपने मित्र तथा सांसद पं० ठाकुरदास भार्गव को इस बात के लिये मना लिया कि वह वनस्पति के उत्पादन पर प्रतिबंध लगाने के लिये एक बिल संसद में पेश करें। ठाकुरदास भार्गव ने इस आशय का एक बिल लोकसभा में पेश भी किया। लालाजी ने दूसरे सांसदों से भी इस बिल का समर्थन करने का आग्रह किया। उन्होंने सांसदों को याद दिलाया कि "यदि पं० ठाकुरदास भार्गव का बिल संसद में पारित नहीं होता तो देश को बहुत मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा।"[25]

जब लालाजी को ज्ञात हुआ कि प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू वनस्पति के उत्पादन पर प्रतिबंध लगाने के पक्ष में नहीं हैं तो उन्होंने सांसदों से अपील की कि वे इस मुद्दे पर अपना वोट देते समय नैतिक साहस का परिचय दें। लालाजी ने उनसे यहाँ तक कहा कि :

> मैं आप सबसे दरखास्त करता हूँ कि आप नेहरू से डरें नहीं। राष्ट्र हित को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए आपको वनस्पति के उत्पादन पर कानूनी प्रतिबन्ध लगवाने हेतु एक जुट होकर भारत के पशुधन की रक्षा करनी चाहिए।[26]

नेहरू जी का समर्थन न मिलने के कारण वनस्पति के उत्पादन पर रोक लगाने का बिल संसद में पास नहीं हो पाया। फिर भी, लालाजी की गतिविधियाँ रुकी नहीं। उन्होंने एक और विकल्प सुझाया कि यदि वनस्पति का उत्पादन बन्द नहीं हो सकता तो कम-से-कम उसे एक अलग रंग दे दिया जाये, ताकि शुद्ध घी में उसकी मिलावट सम्भव न हो सके। इस विषय पर लालाजी और अनेक गांधीवादी विचारकों की राय थी :

— वनस्पति में दस प्रतिशत 'तिल का तेल' मिलाने से भी यह प्रयोजन सिद्ध हो सकता है।[30]

किन्तु लालाजी को उस समय गहरा दुःख हुआ जब भारत के खाद्य-मंत्री श्री करमारकर ने सन् 1959 में लोक सभा में निम्नलिखित वक्तव्य दिया : "हमें अभी तक वनस्पति के लिये उपयुक्त रंग नहीं मिल पाया है। फिर भी इस दिशा में हमारी कोशिश जारी रहेगी।"[31] मंत्री महोदय के वक्तव्य पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए, लालाजी लिखते हैं :

> संसार ने ऐटम बम और हाइड्रोजन बम बनाने में कामयाबी हासिल कर ली है। कांग्रेसी नेता प्रायः बड़े गर्व से यह दावा करते हैं कि उन्होंने भी विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में बहुत प्रगति की है। इसके बावजूद, जब मंत्री महोदय यह कहते हैं कि वनस्पति के लिये अभी तक उपयुक्त रंग नहीं मिल पाया है, तो उनका यह वक्तव्य हास्यास्पद जान पड़ता है।[32]

लालाजी की राय में, यदि सरकार वनस्पति के लिये उपयुक्त रंग ढूँढ पाने में असमर्थ है, तो उसे तेलों का हाइड्रोजनीकरण पूरी तरह समाप्त कर देना चाहिये और तेल को अपनी स्वाभाविक तरल अवस्था में बने रहने देना चाहिये। भारत जैसे देश में जनता को शुद्ध तेल ही उपलब्ध कराना बेहतर है, जो न केवल सस्ता है, बल्कि स्वास्थ्यकर भी है। किन्तु सरकार ने इस प्रस्ताव को अनसुना कर दिया।

लालाजी और उन जैसी सोच वाले दूसरे नेताओं ने भारत सरकार को एक अन्य व्यवहारिक सुझाव भी दिया कि वह शुद्ध घी के कुटीर उद्योग को संरक्षण प्रदान करे। लालाजी सरकार से प्रायः निवेदन करते थे कि, वह इस मामले में पाश्चात्य देशों के कानूनों का अनुसरण करे। उदाहरण के लिये, इंगलैंड में मार्गरीन (नकली मक्खन) का उत्पादन और बिक्री 'भोजन एवं औषधि मिलावट कानून, 1928' के अन्तर्गत सख्ती से लागू किया जाता है। वहाँ मार्गरीन को शुद्ध मक्खन के साथ मिलावट के लिये इस्तेमाल करने की कोई सम्भावना नहीं छोड़ी गई है, और न ही भोज्य-पदार्थ के रूप में वह शुद्ध मक्खन से होड़ कर सकता है। डेनमार्क में मार्गरीन के उत्पादकों को अपने ब्रांड का विज्ञापन करने की इजाजत

नहीं है। अमेरिका में मार्गरीन के उत्पादन को विशेष टैक्स लगाकर नियंत्रित किया गया है।[33] इन उदाहरणों का इटली, कनाडा और दक्षिण अफ्रीका की सरकारों द्वारा भी अनुसरण किया गया है। इस प्रकार इन देशों में शुद्ध मक्खन में नकली मक्खन की मिलावट को प्रभावशाली ढंग से रोका गया है।

इसके अतिरिक्त, लालाजी ने पत्रकारों, विशेषकर जिनका राष्ट्रीय दृष्टिकोण था, से निवेदन किया कि वे वनस्पति के समर्थन में कुछ भी न छापें।[34]

जीवन-पर्यन्त लालाजी वनस्पति उत्पादकों को राष्ट्र का शत्रु मानते रहे। उनकी नाराजगी इस कदर थीं कि उन्होंने वनस्पति के उन उत्पादकों के लिए सजा का सुझाव दिया, जो शुद्ध घी में वनस्पति की मिलावट करते थे। वह गांधीजी के दृष्टिकोण से शत-प्रतिशत सहमत थे कि, 'यदि खोटा सिक्का चलाना अपराध और दंडनीय है, तो नकली घी बनाना व मिलावट करना दण्डनीय क्यों नही ? जबकि असली घी तो सिक्कों से कहीं कीमती है।[35] गांधीजी आगे कहते हैं : 'वनस्पति को शुद्ध घी की शक्ल में और घी के नाम पर बेचना भारतीय जनता को धोखा देना है, और किसी भी सरकार को इसे बर्दाश्त नहीं करना चाहिए।'[36] लालाजी की राय में, वनस्पति को घी में मिलाना अपराध है और उसके लिये जुर्माना तथा करावास, दोनों ही दण्डों का प्रावधान होना चाहिये। यदि यह अपराध दुबारा किया जाये, तो और सख्त सजा दी जानी चाहिये। लालाजी ऐसी प्रवृत्ति के व्यापारियों को देश-द्रोही मानते थे। इस विषय में सरकार की असफलता की आलोचना करते हुए, लालाजी ने भिन्न-भिन्न अवसरों पर निम्न विचार व्यक्त किये :

– हमारी सरकार जो कि समाजवादी होने का दावा करती है, वास्तव में कुछ पूँजीपति वनस्पति उत्पादकों के हाथों की कठपुतली बन गई है।
– यदि हम ऐसी सरकार को बख्श देते हैं, जो देश के दुश्मनों के हितों की रक्षा में लगी हुई है, तो हम अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्य में चूक जायेंगे।

– यदि वनस्पति के उत्पादक, कांग्रेस को इतने ही प्रिय हैं, तो मैं कांग्रेस पार्टी को यह सुझाव दूँगा कि वह 'बैलों की जोड़ी' के बजाय 'वनस्पति के कारखाने' को ही पार्टी का 'चुनाव चिह्न' बना लें।[37]

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लालाजी और दूसरे गांधीवादी विचारकों की तमाम कोशिशों के बावजूद, वनस्पति का उत्पादन नहीं रुका, बल्कि तेजी से बढ़ता गया। अब प्रश्न उठता है कि इस असफलता के लिये, कौन जिम्मेदार है ?

सन् 1950 तक वनस्पति उद्योग ने इस देश में अपनी जड़ें गहरी जमा ली थीं। यह उद्योग उत्पादकों तथा विक्रेताओं, दोनों के लिये भारी मुनाफे वाला था। वनस्पति का झूठा प्रचार जोरों पर था। सन् 1949-50 में एक अनुमान के अनुसार, 'सात लाख रुपये की खासी रकम केवल प्रचार पर खर्च की गई।'[38] झूठे प्रचार और विज्ञापनों के कुछ नमूने यूं हैं :

– परीक्षण के परिणामों ने यह अंतिम रूप से सिद्ध कर दिया है कि वनस्पति 'पौष्टिक' और 'स्वास्थ्यकर' है।
– जो लोग वनस्पति का विरोध करते हैं, वे वास्तव में अमीरों के मित्र और गरीबों के दुश्मन हैं।
– यदि वनस्पति पर प्रतिबंध लगा दिया गया, तो देशी घी तीन गुना मँहगा हो जायेगा।[39]

सन् 1950 तक वनस्पति उद्योग हजारों लोगों को रोजगार दे चुका था और उसके पास करोड़ों रुपयों की संपत्ति हो चुकी थी। इस उद्योग के बारे में सन् 1950 का एक अनुमान है :

> वनस्पति उद्योग में लगभग साढ़े बाइस करोड़ रुपये की पूँजी का निवेश किया गया है। बयालीस कारखाने चालू हैं और सत्रह निर्माणाधीन हैं। इस उद्योग ने सन् 1949 में डेढ़ लाख टन वनस्पति का उत्पादन किया और सन् 1950 में चार लाख टन वनस्पति करने की उम्मीद की जाती है। सन् 1948 में इस उद्योग में सरकार को 4.5 करोड़ रुपये कर में दिये और भविष्य में इससे अधिक देना निश्चित है। इस उद्योग में 15,000 से अधिक मजदूर लगे हुए हैं

और लगभग इतने ही बिचौलिये होंगे। इनके अलावा, दफ्तरों में काम करने वालों का बड़ा अमला है।[40]

यह विवरण 'वनस्पति निर्माता संघ' द्वारा सन् 1950 में प्रकाशित एक पुस्तिका में दिया गया है। किन्तु यह पुस्तिका निर्माताओं के मुनाफे के विषय में मौन है। के०जी० मशरूवाला के मतानुसार, 'सन् 1950 के एक वर्ष में ही वनस्पति निर्माताओं को 1.5 करोड़ रुपये का लाभ हुआ।'[41]

उपरोक्त आंकड़ों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि कुछ वनस्पति निर्माताओं की धन-लोलुपता के कारण, यह उद्योग खूब फला-फूला। वनस्पति उद्योग, निःसन्देह कपड़ा या चीनी जैसे दूसरे उद्योगों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक लाभप्रद था।

लालाजी और कुछ गांधीवादी नेताओं का अभियान निःसन्देह वनस्पति उत्पादकों के हितों के विपरीत था, इसलिए वे हमेशा इस अभियान के खिलाफ अपनी चालें चलते रहते थे। हाँ, एक समय ऐसा आया जब अन्तरिम सरकार (1946-1947) ने वनस्पति उद्योग को दी हुई उत्पादन की इजाजत को वापस ले लिया। पर ये मुनाफाखोर, हाथ पर हाथ धरे कैसे बैठ सकते थे? अतः इन सबनें मिलकर, सरकार पर अपना निर्णय बदलने के लिये दबाव डाला। इसके लिये उन्होंने जो कदम उठाये, वे थे :

- बनावटी घी के पक्ष में, पैसा देकर कई लेख अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाये।
- धन देकर, कुछ विशेषज्ञों से अपने अनुकूल राय हासिल कर प्रकाशित की गई।
- वनस्पति के समर्थन में, हजारों तार और पत्र सरकार को भिजवाये गये।

देश के बँटवारे से उत्पन्न संकट और पूँजीपतियों के बढ़ते दबाव के सामने, सरकार ज्यादा दिन न टिक सकी और चार महीने के अन्तराल में ही प्रतिबंध वापस ले लिया। इस मुद्दे को यह कहकर खटाई में डाल दिया कि इस विषय में विशेषज्ञों में मतभेद है और इसमें अभी भी परीक्षण किये जा रहे हैं।[42] इसके तुरन्त बाद, वनस्पति उत्पादकों ने बड़ी तेजी से

बनावटी घी का उत्पादन शुरू कर दिया, जो दिन दुगणी व रात चुगणी बढ़ता ही गया।

यद्यपि वनस्पति निर्माताओं की 'लॉबी' बहुत ताकतवर थी, फिर भी लालाजी कभी उनके सामने झुके नहीं, बल्कि जब भी अवसर मिला उन पर वार करने से नहीं हटे। वनस्पति निर्माताओं ने उन्हें धन का प्रलोभन भी दिया, पर लालाजी हमेशा उन्हें देश का दुश्मन मानते रहे। लालाजी ने इस आशय की एक पुस्तक भी लिखी जिसका शीर्षक था, *'देश के दुश्मन'*। लालाजी उन गिने-चुने देशभक्तों में से थे, जिन्होंने वनस्पति निर्माताओं के नापाक इरादों का सन् 1939 से ही विरोध करना प्रारम्भ कर दिया था, उदहारणार्थ :

> वनस्पति स्पष्टतया जहर है, फिर भी इसे घी के नाम की आड़ में बेचा जा रहा है। देश की जनता के स्वास्थ्य की कीमत पर सरकार कुछ वनस्पति निर्माताओं के हितों की रक्षा कर रही है। वनस्पति निर्माताओं के खिलाफ आवाज तो उठाई गई थी, किन्तु सरकारी तंत्र को रिश्वत देकर इस आवाज को दबा दिया गया।[43]

धन सम्पन्न वनस्पति निर्माताओं ने, न केवल सरकारी तंत्र को खरीदा, बल्कि समाज के दूसरे महत्वपूर्ण वर्गों को भी भ्रष्ट किया। ऐसे लोगों का पर्दाफाश करते हुए, लालाजी एक स्थान पर लिखते हैं :

– जहां तक समाचार पत्रों का सम्बन्ध है, वे या तो पूँजीपतियों की ही मल्कियत हैं या उन्हें विज्ञापनों के द्वारा खरीद लिया गया है।
– ऐसे बहुत से लोभी डाक्टर, वैद्य, हकीम और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हैं, जो इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि वनस्पति देश का दुश्मन है, किन्तु फिर भी वनस्पति के खिलाफ आवाज जानबूझ कर नहीं उठाते, क्योंकि वे पूँजीपतियों के द्वारा खरीदे जा चुके हैं।[44]

लालाजी के विचार में जो तत्व पूँजीपतियों से सर्वाधिक प्रभावित थे, वे दुर्भाग्यवश अधिकतर सत्ताधारी कांग्रेस के ही नेतागण थे। ऐसे नेताओं ने गांधी जी और राष्ट्र की इच्छाओं की तनिक भी परवाह किये बिना, वनस्पति विरोधी आंदोलन का विरोध किया।[45] जब लालाजी से यह पूछा

गया कि इन नेताओं ने वनस्पति निर्माताओं के हितों की रक्षा क्यों की? तो इन्होंने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए, 30 अप्रैल 1961 को खुले शब्दों में लिखा : "कारण यह है कि चुनाव के दिनों में यह 'वनस्पति निर्माता-वर्ग' इन कांग्रेसियों की खुले हाथ से वित्तीय सहायता करते हैं।"[46]

पैसे की ताकत से वनस्पति बनाने वाले पूँजीपतियों ने धीरे-धीरे कुशल तकनीशियनों, प्रचार के साधनों, सरकारी तंत्र और कांग्रेसी नेताओं को अपने पक्ष में कर लिया। पूँजीपतियों की पैसे की ताकत ने लालाजी तथा गांधीवादी नेताओं की तमाम कोशिशों को नाकाम कर दिया। आचार्य विनोबा भावे सच ही कहते हैं : "इन पूँजीपतियों ने चारों तरफ से हमारे दिमाग को जकड़ रखा है।"[47]

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद वनस्पति को भारत में लाने का जिम्मेदार था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि कोई भी विजेता प्रायः परोपकारी नहीं होता। फिर अंग्रेज तो बड़े चतुर-चालाक शोषणकर्त्ता थे और वे हमेशा ऐसी योजनायें बनाते थे जिससे भारत में उनके शासन की जड़ें मजबूत हो जायें। भारत में वनस्पति को बढ़ावा देकर अंग्रेज अपना उद्देश्य पूरा कर रहे थे। वे जानते थे कि गाय भारत की शक्ति का मजबूत आधार है और वनस्पति के द्वारा गाय के महत्व को घटाया जा सकता है।

अंग्रेजों की इस कुटिल नीति के फलस्वरूप, गाय की कीमत पर, वनस्पति का उत्पादन और उपभोग बढ़ने लगा। दूसरी तरफ, गऊओं का वध बड़े पैमाने पर हो रहा था और अंग्रेज व्यापारियों की कमाई बढ़ती जा रही थी, क्योंकि वे भारी मात्रा में गोमांस, गाय का चमड़ा और दूसरी वस्तुएँ निर्यात कर रहे थे। फलतः घी-दूध का उत्पादन और उपभोग कम हो गया जिससे भारतीयों के स्वास्थ्य पर भी उल्टा असर पड़ा। लालाजी अंग्रेजों के स्वार्थपूर्ण उद्देश्य को भली-भाँति समझते थे। उन्होंने अंग्रेजों की इस खतरनाक नीति के बारे में देश की जनता को आगाह कराते हुए, लिखा :

एक छोटा देश बड़े देश पर अपना राज बरकरार रख सकता है, बशर्ते कि वह जानता हो कि अपने आधीन लोगों का शारीरिक

स्वास्थ्य किस प्रकार बिगाड़ा जा सकता है। इसलिये वनस्पति इंगलैंड द्वारा बहुत सोच-विचार कर बनाई गई योजना है जिससे 6 करोड़ आबादी वाला देश (इंग्लैण्ड) 40 करोड़ वाली आबादी के देश (भारत) पर शासन कर सके।[48]

लालाजी के ख्याल में वनस्पति का हथियार बड़ा खतरनाक था क्योंकि इससे पूरा राष्ट्र कमजोर हो रहा था। स्वास्थ्य के अतिरिक्त, इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई, देश का पशुधन घट गया और व्यापारिक नैतिकता में गिरावट आयी। लालाजी को तब बड़ा आघात लगा, जब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी कांग्रेसी नेताओं ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के इस कुटिल षड्यंत्र से अपने प्रिय देश को बचाने का कोई प्रयास नहीं किया।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि वनस्पति के आरम्भ से ही, लालाजी ने इसका विरोध करने के लिए क्या-क्या कोशिशें कीं? अब एक सवाल पूछा जा सकता है—उनकी तमाम कोशिशों का नतीजा क्या निकला?

जैसा पहले बताया जा चुका है कि लालाजी ने दूसरे राष्ट्रवादी नेताओं—जैसे गांधीजी, विनोबा, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, जे०सी० कुमारप्पा और के०जी० मशरूवाला—के साथ मिलकर वनस्पति के खिलाफ आवाज उठाई। और यह भी सच है कि अन्तरिम सरकार ने 1946 में वनस्पति निर्माताओं को दी गई इजाजत चार महीने के लिये वापस ले ली थी।

22 मई 1949 को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की एक महत्वपूर्ण बैठक हुई जिसमें यह निर्णय लिया गया कि वनस्पति को निकट भविष्य में रंग दिया जाये। तदनुसार, संबंधित अधिकारी देश के विभिन्न भागों में और देश के बाहर भी रंगों के नमूने खोजने लगे। सरकार को भी ऐसे बहुत से नमूने प्राप्त हुए। साथ ही डॉ० प्रफुल्ल चन्द्र घोष की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन किया गया जिसका काम यह अध्ययन करना था कि वनस्पति का देश के पशुधन पर और कृषि पर क्या प्रभाव पड़ता है। वनस्पति के प्रश्न पर विचार करने के लिये 5 दिसम्बर 1950 को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की एक और बैठक हुई। पं० गोविन्द बल्लभ पंत के

सुझाव पर यह निर्णय लिया गया कि यदि वनस्पति को रंगना सम्भव या व्यावहारिक नहीं है, तो तेलों का हाइड्रोजनीकरण बन्द कर देना चाहिये।[49]

इसके अतिरिक्त, लालाजी के घनिष्ठ मित्रों—पं० ठाकुरदास भार्गव, झुलन सिंह सिन्हा और बाबू जुगल किशोर—ने वनस्पति के प्रश्न पर पार्लियामेंट में बिल पेश किये।[50] लालाजी के जीवन के अन्तिम क्षणों तक देश की संसद और विधान सभाओं में वनस्पति के प्रश्न पर बहस चलती रही। उनके अनथक प्रयासों के कारण, वनस्पति का प्रश्न कांग्रेस सरकार के लिये लगातार सिर दर्द बना रहा।

सन् 1960 में योजना आयोग (प्लानिंग कमीशन) के सदस्य श्री मन्नारायण अग्रवाल ने 'गोपालन गोष्ठी' के समक्ष यह वक्तव्य दिया : वनस्पति में रत्नजोत रंग मिलाने का निर्णय किया गया है।[51]

इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि लालाजी की तमाम कोशिशों के बावजूद, न तो वनस्पति का उत्पादन बन्द हुआ और न ही उसे रंगा गया। तो फिर एक और प्रश्न उठता है, "क्या लालाजी अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहे?" यह सही है कि लालाजी वनस्पति का उत्पादन बन्द कराने या उसे रंगाने के उद्देश्य में सफल नहीं हो पाये। किन्तु उन्होंने बड़ी ही निर्भीकता से ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कुटिल नीतियों, कांग्रेस पार्टी की कमजोरियों और पूँजीपतियों की चालों का खुलकर पर्दाफाश किया। साथ ही उन्होंने अपने देशवासियों को आगाह किया कि कांग्रेसी नेता समाजवाद के नाम पर हम से खिलवाड़ कर रहे हैं।

सन्दर्भ

1. हरदेव सहाय, *मीठा जहर* (हिसार, 1946), पृष्ठ-3.
2. *गोधन*, 30 अगस्त 1959.
3. *The Harijan*, 12 December 1946.
4. हरदेव सहाय, *देश के दुश्मन* (देहली, 1947), पृष्ठ 19.
5. *मीठा जहर*, पृष्ठ 15.
6. *मराठी हरिजन*, 16 फरवरी 1947.
7. *मीठा जहर*, पृष्ठ 11.

8. *The Times of India,* 30 March 1950.
9. *गोधन,* 30 अगस्त 1960.
10. Datar Singh, *Vansapati and Ghee* (Wardha, 1946), p. 8.
11. *देश के दुश्मन,* पृष्ठ 21-22.
12. वही.
13. *गोधन,* 30 अगस्त 1959.
14. *देश के दुश्मन,* पृष्ठ 43.
15. वही, पृष्ठ 25.
16. *The Harijan,* 6 April 1947.
17. *गोधन,* 30 अगस्त 1960.
18. *मराठी हरिजन,* 16 फरवरी 1947.
19. *देश के दुश्मन,* पृष्ठ 43.
20. *Deceptive Oil* (Wardha, 1950), p. 18.
21. *गोधन,* 30 अगस्त 1960.
22. *मीठा जहर,* पृष्ठ 11.
23. शादी राम जोशी, *इन्सानियत के पहरेदार* (देहली, 1972), पृष्ठ 160.
24. वही.
25. *गोधन,* 30 अगस्त 1959.
26. वही.
27. *Deceptive Oil, op. cit.,* P. 5.
28. *ग्राम सेवक,* 31 जुलाई 1938.
29. *मीठा जहर,* पृष्ठ 11-12.
30. *देश के दुश्मन,* पृष्ठ 16.
31. *गोधन,* 15 नवम्बर 1960.
32. वही, 30 अगस्त 1959.
33. *Vanaspati and Ghee, op. cit.*, p. 12.
34. *गोधन,* 30 अगस्त 1960.
35. *The Harijan,* 14 April, 1946.
36. वही, 13 अक्तूबर 1946.
37. *गोधन,* 5 फरवरी 1957 व 30 अगस्त 1960.
38. *Deceptive Oil, op. cit.*, p. 29.
39. वही, पृष्ठ 3.
40. वही, पृष्ठ 29.
41. वही.
42. *Deceptive Oil, op. cit.*, pp. 3-4.

43. *ग्राम सेवक*, 15 सितम्बर 1939.
44. *गोधन*, 30 अगस्त 1960.
45. वही, 30 अप्रैल 1961.
46. वही.
47. *मराठी हरिजन*, 16 फरवरी 1947.
48. *मीठा जहर*, पृष्ठ 1.
49. *गोधन*, 15 नवम्बर 1960.
50. विस्तार के लिए कृपया देखिये, *Parliament Debates*, 1949-62.
51. *गोधन*, 15 नवम्बर 1960.

छठा अध्याय

गो-महिमा के ज्ञाता

भारतवर्ष में अनादि काल से 'गाय' को 'माता' के नाम से सम्बोधित किया गया है। ऐसा मान-सम्मान उसे संसार में अन्यत्र कहीं नहीं दिया जाता। मुस्लिम काल में यदा-कदा गाय का वध होता था, और ब्रिटिश काल में गाय बड़ी संख्या में काटी जाने लगी। आश्चर्य की बात तो यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी, आज मुंबई, कोलकाता और चैन्नई के बूचड़खानों में प्रतिदिन हजारों गायें-बैल इत्यादि काटे जाते हैं।[1] गोवध के कारण चाहे जो भी हों, परन्तु गाय के प्रति हिन्दुओं की आस्था आज भी अडिग है।

लाला हरदेव सहाय के जीवन काल (1962) तक, भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यतः गोवंश पर आधारित थी। भारत के अनेक स्थानों पर आज भी बैल, हल चला कर जमीन जोतता है, गाड़ी खींचता है, गन्ने और तेल का कोल्हू चलाता है, खलिहान में अन्न की मंडाई करता है। साथ ही गाय और बैल, गोबर और मूत्र के रूप में खाद देते हैं। गोमूत्र, औषधि के रूप में भी प्रयोग होता है। गाय स्वास्थ्यवर्धक दूध देती है। मरने के बाद भी, गाय हमें अपनी मूल्यावान हड्डियाँ, सींग, चमड़ा आदि देती है। गाय का पूरा जीवन निःस्वार्थ सेवा, विनम्रता और सहनशीलता जैसे गुणों का अनूठा उदाहरण है, और ये गुण भारतीय संस्कृति की भी प्रमुख विशेषतायें हैं। लालाजी के अनुसार, "गऊ हिन्दू धर्म का मूल तत्व है, भारतीय संस्कृति का प्रतीक है, भारतीय अर्थव्यवस्था का केन्द्र है और मानव जीवन का आधार है।"[2] निम्नलिखित वाक्य को लालाजी हमेशा याद रखते थे और अवसर दोहराते थे :

गाय मरी, तो बचता कौन ?
गाय बची, तो मरता कौन ?[3]

लालाजी उन कतिपय भारतीयों में से थे जिन्होंने गाय के दूध, दही,

पनीर, मक्खन, घी और छाछ के गुणों का गहराई से अध्ययन किया। गाय-दूध के गुणों और उसकी उपयोगिता के विषय में उन्होंने एक बार कहा था :

- गाय का दूध, मनुष्य के सभी आहारों में सबसे अधिक पौष्टिक, स्वास्थ्यवर्धक और शुद्ध है।
- इससे मनुष्य की सजगता और फुर्ती बढ़ती है।
- इससे मनुष्य की सर्दी और गर्मी के विरुद्ध अवरोध शक्ति बढ़ती है।
- गाय के दूध का सेवन क्रोध का शमन करता है।
- इसके सेवन से मनुष्य दीर्घायु होता है।
- गाय का दूध सुपच है, मनुष्य का शरीर इसे दो घंटे में पचा लेता है। यहाँ तक कि शिशु भी इसे आसानी से हजम कर सकता हैं।[4]

इसके अतिरिक्त, लालाजी की राय में गोवंश राष्ट्रीय आय का एक बहुत बड़ा साधन था। इस पहलू पर प्रकाश डालते हुए, लालाजी सन् 1958 में लिखते हैं :

गोवंश से हमें प्रतिवर्ष 300 करोड़ रुपये की आय होती है, जो राष्ट्रीय आय के चौथाई भाग से अधिक है। भारतवर्ष की सभी कपड़ा, चीनी, इस्पात आदि की मिलों से कुल मिला कर इतनी राष्ट्रीय आय नहीं होती है, जितनी अकेले गोवंश से।[5]

लालाजी गाय के सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व से भी भली-भाँति परिचित थे। गाय के इस पक्ष को उजागर करते हुए, उन्होंने विभिन्न अवसरों पर निम्नलिखित विचार व्यक्त किये :

- भगवान शिव का वाहन 'नंदी' नामक बैल है। शिव को 'पशुपति' भी कहा जाता है।[6]
- भगवान कृष्ण स्वयं गोपालन करते थे, इसलिए उन्हें 'गोपाल या गोविन्द' भी कहा जाता है।[7]
- भगवान बुद्ध गाय को माता, पिता और भाई की तरह प्रिय मानते थे।[8]

- सम्राट हर्षवर्धन युद्धभूमि में जाने से पहले, गाय की पूजा करते थे।[9]
- गुरु गोबिन्द सिंह ने भगवान से प्रार्थना की थी : "हे प्रभु, मुझे गाय के दुःख के निवारण की शक्ति दो।"[10]
- स्वामी दयानन्द का विश्वास था कि राजा और प्रजा का कल्याण गऊ की रक्षा में निहित है।[11]

सदियों तक गाय भारतवर्ष के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग रही है। इसलिये राजा और प्रजा अक्सर गाय के लिये अनेक बलिदान करने के लिये तैयार रहते थे। भारतवर्ष का इतिहास इस प्रकार के बलिदानों का साक्षी है। अतीत से कुछ दृष्टांत देते हुए, लालाजी लिखते हैं :

- भगवान राम के पूर्वज चक्रवर्ती राजा दिलीप, नन्दिनी नामक गाय की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हो गये थे।[12]
- महर्षि वशिष्ठ ने एक गाय की रक्षा के लिए अनेक कष्ट सहे।[13]
- महर्षि जमदग्नि ने गाय के लिये अपना सिर कटवा दिया।[14]
- पृथ्वीराज चौहान ने सन् 1192 में अपने साम्राज्य की बाजी लगा दी, किन्तु उसकी सेना ने उन गऊओं पर हथियार नहीं चलाये जिन्हें मुहम्मद गौरी ने अपनी फौज के आगे खड़ा कर दिया था।[15]
- छत्रपति शिवाजी ने सन् 1639 में 12 वर्ष की कोमल आयु में बीजापुर नवाब की सल्तनत में अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी जिससे कि वह उस हाथ को काट सकें जिस हाथ ने गोवध किया था।[16]
- गुरु तेगबहादुर ने सन् 1675 में ब्राह्मणों और गऊओं की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर दिया।[17]
- सन् 1857 के गद्दर का एक कारण यह था कि कारतूसों में गाय की चर्बी इस्तेमाल की जाती थी। कुछ छावनियों में तो हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने अपनी जान का खतरा मोल लेकर ऐसे कारतूसों को इस्तेमाल करने से इंकार कर दिया।[18]

– 17-18 जनवरी 1872 को 64 नामधारी सिखों को गऊ प्रेम की कीमत चुकाने के लिए तोपों से उड़ा दिया गया और एक 12-वर्षीय बालक काका बिशन सिंह को तलवार से टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया। नामधारी सिखों के नेता बाबा राम सिंह को अपने 11 शिष्यों सहित देश निकाला देकर रंगून भेज दिया गया।[19]

– 18 अगस्त 1919 को कटारपुर (हरिद्वार के निकट) के 145 गोभक्तों को कठोर सजायें सुनाई गईं : 8 को फाँसी की सजा दी गई, 135 को कालापानी की सजा हुई और दो को 7 साल की कड़ी कैद की सजा दी गई।[20]

लालाजी के अनुसार, भारत का इतिहास गाय के लिए की गई कुर्बानियों से भरा पड़ा है। धर्मग्रंथों और महापुरुषों की वाणियों में यहा तक जिक्र आता है कि गोवध समाज के लिए आत्महत्या के समान है। इस प्रकार की उक्तियों और वक्तव्यों का जिक्र करते हुए, लालाजी लिखते हैं :

– गाय को वेदों में 131 बार 'अघन्य' कहा गया है।[21]

– कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पशुओं तथा पक्षियों की रक्षा के लिए बनाए गए कानूनों का उल्लंघन करने पर दण्ड का प्रावधान था।[22]

– भगवान बुद्ध ने अपने उपदेशों में वाममार्गियों के द्वारा होने वाले गोवध को बन्द करवाया था।[23]

– अशोक का शासन काल (273-32 ई.पू.) वास्तव में पशुओं के लिए स्वर्ण युग था। गाय की तो हत्या बहुत दूर की बात है, एक चिड़िया को भी मारने की इजाजत नहीं थी।[24]

– प्रथम मुगल बादशाह बाबर ने सन् 1530 में शहजादा हुमायूँ को अपनी वसीयत में सलाह दी थी कि वह गाय की कुरबानी देने से बचे।[25]

– महर्षि दयानन्द ने सन् 1880 में महारानी विक्टोरिया को गोवध के विरोध में एक ज्ञापन देने हेतु, हस्ताक्षर अभियान चलाया था।[26]

— महात्मा गांधी ने सन् 1925 में कहा था, "मेरे विचार से गोवध और मनुष्य की हत्या एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।"[27]

— आचार्य विनोबा भावे ने सन् 1951 में कहा था, "गोवध पर प्रतिबंध लगाना जनादेश है।"[28]

गोवंश की रक्षा के प्रश्न पर लालाजी का ज्ञान केवल भारतवर्ष तक ही सीमित न था। उन्होंने पाश्चात्य विद्वानों के गऊ प्रेम का भी अध्ययन किया। अपने विस्तृत ज्ञान का परिचय देते हुए, लालाजी अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार एवं गोप्रेमी जार्ज बर्नार्ड शॉ का दृष्टांत निम्नलिखित शब्दों में देते हैं :

जब जार्ज बर्नार्ड शॉ मृत्युशैय्या पर थे तब उनके डाक्टर ने सलाह दी कि यदि वह जीवित रहना चाहते हैं, तो उन्हें गोमांस भक्षण करना चाहिए। बनार्ड शॉ ने स्वर्णक्षरों में लिखे जाने योग्य शब्दों में उत्तर दिया, "मेरी हालत वास्तव में बहुत खराब है और मुझसे वादा किया जा रहा है कि यदि मैं गोमांस खाऊँ तो मेरी जीवन रक्षा हो सकती है। किन्तु नहीं, मुझे तो यह विचार मात्र घृणित जान पड़ता है। मैंने अपनी विरासत में लिखा है कि मेरी शव यात्रा में मनुष्य नहीं, बल्कि गायें और दूसरे जानवर होंगे जिन्होंने एक ऐसे इंसान की मौत पर मातम मनाने के लिए सिर पर रूमाल बाँधे होंगे जिसने अपनी जिन्दगी में पशुओं को अपना साथी माना और गोमांस खाने की बजाय मरना पसंद किया।"[29]

इसमें कोई शक नहीं कि गाय के पक्ष में बहुत कुछ कहा गया है, लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं कि गोवध के पक्ष में कुछ नहीं कहा गया। लालाजी के अनुसार, कुछ सार्वजनिक व्यक्तियों ने इतिहास को तोड़-मरोड़ कर प्राचीन भारत के महापुरुषों के गोमांस खाने की बात कही है, उदहरणार्थ :

— आचार्य विनोबा भावे *'गीता प्रवचन'* में लिखते हैं कि एक बार भगवान राम के गुरु महर्षि वशिष्ठ ने महर्षि बाल्मीकि के आश्रम में बछड़े का मांस खाया था।

— प्रसिद्ध गांधीवादी काका साहब कालेलकर ने डी०डी० कोसाम्बी